CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आयुर्वेदिय परिभाषा

श्री गिरिजादयालु शुक्ल

है ॥
प्रण होत
का होता
पाकलक्षणानि य माशा
गुलुमण्डूरपाक तुला ॥
सिद्धक्षारतोयलक्ष माम सा
क्तस्य द्वैविध्यम द्रव्य १३ ॥ पा०
त्रिविधा यवा द्वि तद्द्वयमत्र'
अन्नादिसा ण्णा ॥ १४ ॥
षडङ्गानि द का प्रयोग पारिभाषिक
यवागूक यौगिक अर्थ नहीं करना
द्वि. घृतजल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS-MoE Grant-2

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

११७

स्व० कविवर-श्रीगङ्गाधरराय-सङ्कलिता

आयुर्वेदीय-परिभाषा

प्रकाशिका-भाषाटीका-परिशिष्टसहिता ।

टीकाकार-

आयुर्वेदाचार्य-श्री गिरिजादयालु शुक्ल ए. एम. एस.

प्रिन्सिपल, कान्यकुब्ज आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ ।

चौखम्बा-संस्कृ

वि० सं० २०१०]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रकाशकः—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः,
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज आफिस.
पो० बाक्स नं० ८ बनारस-१

पुनर्मुद्रणादिकाः सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः

JAYA KRISHNA DAS HARI DAS GUPTA
The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
P. O. Box 8, Banaras.
1953

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस-१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समर्पणम्

पूजनीय स्वर्गीया 'माता जी'-

की प्रशान्त आत्मा के-

अमर-क्रोड में,

सहज—श्रद्धाञ्जलि का,

बाल-समर्पण।

है ॥
रण होत।
का हो॰ शा
पाकलक्षणानि य माशा
गुलुमण्डूरपाक ॥ ३ ॥
सिद्धक्षारतोयलक्ष ३म सा
भक्तस्य द्वैविध्यम्
त्रिविधा यवा द्रव्य १३ ॥ पा०
अन्नादिसाध तद्द्वयमत्तः'
षडङ्गादि ॥ १४ ॥
यवागूकर शब्द का प्रयोग पारिभाषिक
घृतजल यौगिक अर्थ नहीं करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष वक्तव्य

इधर कुछ दिनों से उ० प्र० गवर्नमेन्ट—के इण्डियन मेडिसिन बोर्ड (Indian Medicine Board) द्वारा नवीन प्रणाली के अनुसार आयुर्वेदिक शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ है, जो कि प्रान्त के सभी विद्यालयों में नियमितरूप से पढ़ाया जा रहा है। इसके विभिन्न विषयों के लिये निर्धारित प्राचीन ग्रन्थों में पाठ्यांश सङ्कलित न होकर इतस्ततः विकीर्ण अथवा अनेक ग्रन्थों में होने के कारण अध्ययनाध्यापन में पर्याप्त परिश्रम एवं विशेष कर छात्रों को अपने कोर्स की तैयारी में बहुत ही असुविधाजनक हो जाता है। वस्तुतः इसके प्रत्येक विषयों के लिये नवीन ढङ्ग से पृथक् ग्रन्थों का निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक है—इसे हर एक आयुर्वेद-मर्मज्ञ स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता;

उक्त सभी बातों का विचार करते हुए 'भैषज्य-कल्पना' के पारिभाषिक भाग के ऊपर कुछ प्रयास किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध कविवर गङ्गाधर द्वारा सङ्कलित एक प्राचीन संग्रह है। लेखक ने तर्क एवं शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा औषध-निर्माण सम्बन्धी प्रत्येक गुत्थी को सुलझा [illegible]क असन्दिग्ध ज्ञान का उत्कृष्ट परिचय दिया है। परन्तु [illegible] इसमें भी पाठ्यक्रम के कई विषयों का उल्लेख [illegible]र्ति के लिये अनेक दृष्टिकोणों से विचार [illegible]ने ही अंश को छपवा कर परिशिष्ट में [illegible]र से इस छोटी सी पुस्तक द्वारा [illegible]षिक शास्त्रीय विवेचन एकत्र सङ्गठित [illegible]श्य ही कुछ न कुछ सुविधा-जनक [illegible]द, गन्धक तथा विषोपविष आदि [illegible]र्धारित ग्रन्थों में ही आ जाता है, [illegible]ा नहीं किया गया है और इसी [illegible]क परिभाषा के निबन्ध के लिये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयान्तर हो जाने से उचित नहीं समझा गया। अगर इससे पाठकों को कुछ भी लाभ हो सके तो इस छोटे से प्रयास को अवश्य ही उत्साह मिलेगा और फिर यह भी आशा हो सकती है कि भविष्य में और भी उत्तम प्रकाशन सम्मुख आ सके। मैं तो—

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितात्तामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥
(कालिदासस्य)

कान्यकुब्ज-आयुर्वेदिक कालेज
लखनऊ, आषाढ़ २००१

विनीतः—
गिरिजादयालु शुक्ल

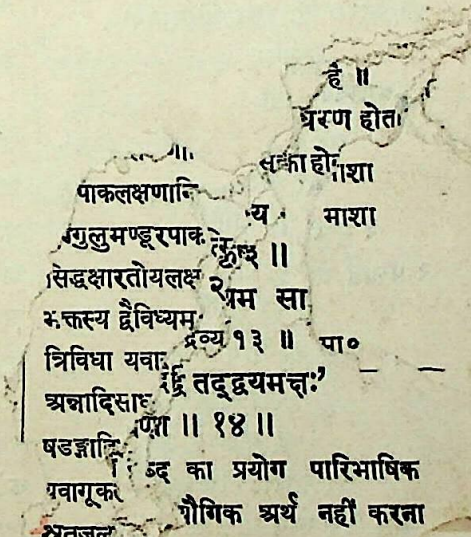
है॥
रण होत
॥ ...का हो...शा
पाकलक्षणानि ...य माशा
गुलुमण्डूरपाक ...॥
सिद्धक्षारतोयलक्ष २म सा
भक्तस्य द्वैविध्यम् ...व्य १३ ॥ पा०
त्रिविधा यवा... तद्द्वयमत्तः'
अन्नादिसा... ण ॥ १४ ॥
षडङ्गादि... द का प्रयोग पारिभाषिक
यवागूक... यौगिक अर्थ नहीं करना
श्रृतजल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मान-प्रकरणम्	
मङ्गलाचरणम्	१
प्रकाशिकाकर्तुर्मङ्गलाचरणम्	,,
मान-प्रयोजनम्	,,
मनूक्तमानम्	२
मानेस्वर्ण-रौप्यनिर्णयः	३
कार्षापणेनाऽभिप्रायः	,,
धरणशब्दे निर्णयः	४
मनूक्तमानस्थाऽऽधुनिकेन सह तुलना	४-५
विष्णूक्तमानम्	५
अक्षार्द्धस्य सञ्ज्ञात्वम्	,,
आधुनिकेन विष्णूक्तमानसमन्वयः	६
[illegible]क्तमानम्	६-७
[illegible] प्रमाणों द्वा[illegible]	
[illegible]ना	,,
[illegible]क	
[illegible]	७-१०
[illegible]प्रति के[illegible]	११
[illegible]ने है[illegible]	
[illegible]ष	
[illegible]षिक	
[illegible]श्य हंशीर सम्बन्धि निर्णयः	२३-२५
[illegible]द, क्षीर-विवेकः	२६
[illegible]र्षिकारणमतान्तरखण्डनम्	२७
[illegible]। कयोचिन्मत खण्डनं तत्र	
[illegible]क प प्रकाशनञ्च	२७-२८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भारान्तमानवर्णनम्	१४-१५
वाहः	१५
द्रवार्द्रद्रव्याणां द्वैगुण्यग्रहणम्	१६
अत्र चरकोक्तिः	,,
तुलापलयोरद्वैगुण्यम्	,,
द्विगुण-ग्रहणे कारणम्	१७
अत्र मतान्तराणि	,,
तत्खण्डनञ्च	१८
स्नेहकुडवे सुश्रुतः	१९
तत्प्रायिकताच	,,
पुरातनानामपि प्राशस्त्यम्	,,
कतिपयार्द्रा एव न द्विगुणिताश्च	,,
कुडव-परिमाणम्	२०
अनुक्तप्रकाशनस्य—	
अनुक्ते द्रव्यग्रहणोक्तिः	२०
अत्र वचनानि	२०-२१
मानानुक्तौ वचनम्	२१
अनेकद्रवमानानुक्तौ निर्णयः	२२-२३
अत्र क्षीरे विशेषवचनम्	२३

n. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
स्नेहमानार्थं कतिपयोदाहरणानि	२८–३१
कल्कादिमाननिर्णयस्य—	
वृषादिकुसुमकल्के मानम्	३१
कल्काढ्यत्वादित्यस्य भावः	३२
शणादिकल्के मानम्	,,
अत्र प्रकाशनम्	,,
उदाहरणम्	,,
कस्यचिन्मते दोषदर्शः	,,
अकल्कः स्नेहः	३३
स्नेहसाधने क्वाथ–कल्पना	,,
अल्पे क्वाथ्यद्रव्ये विधिः	३४
मृद्वादौ जलप्रमाणम्	,,
क्वाथे सुश्रुतानुसारी निर्देशः	३४–३५
अत्रोदाहरणम्	,,
तुलाद्रव्ये जल प्रमाणम्	,,
प्रकाशनम्	,,
उदाहरणे	३५–३६
पलशतनिर्देशेऽपि जलद्रोणः सोदाहरणः	३६
गुणत्वे प्रकाशनम्	३७
अव्यक्तविवेचनस्य	
गणनिर्देशे कल्कादि विवेचनम्	३७
यथा पिप्पल्यादिघृते	३७–३८
अधिकरणशब्दे मतान्तरम्	,,
निश्चलकरव्याख्यान-प्रकाशनम्	३८
करणनिर्देशेऽपि क्वाथकल्कौ	३८–३९
द्वयोर्विरोधे द्वावपि प्रमाणम्	३९
करणेनोक्तौ कल्क एव तत्खण्डनञ्च	३९–४०
अत्र वादिप्रतिवादि-पक्षसाधना	४०
कल्कक्वाथयोर्मुख्यगौणत्वे	४१
गणेऽधिकारे कल्कक्वाथौ सोदाहरणौ	,,
एतन्मतखण्डनम्	,,
अधिकरणशब्दः स्थानपर्यायः सोदाहरणः	४२
गण–निर्देशे सनिष्कर्षो निर्णयः	,,
स्नेहपाकक्रमः	४३
पाकान्ते विरामकालः	,,
रात्रिशब्दाभिप्रायः	४३–४४
स्नेह एकत्रपाकसमर्थनम्	४४
विभिन्न द्रवेषु विरामकालः	४५
पाकप्रकारस्य—	
पाकभेदास्तल्लक्षणानि हेतु ॥ प्रयोगाश्च वरण होता	
सिद्धस्नेहलक्षणानि शंका होना शा	
गुडपाकलक्षणानि य माशा	
गुग्गुलुमण्डूरपाके कृष्ण ॥	
सिद्धक्षारतोयलक्ष ३ प्रम सा	
भक्तस्य द्वैविध्यम् द्रव्य १३ ॥ पा०	
त्रिविधा यवा रुद्र तद्द्रव्यमत्तः'	
अन्नादिसा ण ॥ १४ ॥	
षडङ्गादि द का प्रयोग पारिभाषिक	
यवागूक यौगिक अर्थ नहीं करना	
शृतजल	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कल्केन यवागूकल्पना	,,
एकत्व विवक्षाभिप्रायः	,,
यूषादिकल्पना विधिः	५०–५१
मांससाधने जलमात्रा	,,
क्षीर–पाकविधिः	,,
काञ्जिकविधिः	,,
प्रलेपविचारस्य—	
प्रक्षेपद्रव्यमात्रा	५१
प्रक्षेप्यप्रक्षेपयोः परिभाषा	,,
मधुशर्करा प्रक्षेपे वैशेष्यम्	५१–५२
प्रक्षेपे जीरकादीनां प्रमाणम्	५२
घृतादीनां मात्रा	,,
प्रक्षेपदानकालः	,,
चूर्णमोदकयेर्गुडमात्रा	५३
भावनाविधिः	,,
स्वरसाभावे विधानम्	,,
[illegible]प्रमाणम्	,,
[illegible]क विधिः	५४
[illegible]विवेकस्य—	
[illegible]हणम्	५४–५५
	,,
	५५
[illegible]ः	,,
	,,
	,,
	–५६
	५६
	,,

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
वर्ज्यस्थानानि	,,
औषधिवीर्यवर्धनोपक्रमः	,,
प्राह्यभेषजम्	,,
औषधाग्नि संयोगफलम्	५७
औषधपाचनार्हपात्रम्	,,
समयसंयोगाद् भेषजवीर्यहानिः	,,
अत्रोपक्रमः	,,
स्पर्शेन वीर्यहानिः	,,
व्युष्टजलगुरुत्वम्	५७–५८
पुनरुक्तौ द्वैगुण्यम्	५८
अभावे प्रतिनिधिः	,,
विभिन्न द्रव्याभावे प्रतिनिधयः	५८–५९
त्रिपञ्चकम्	५९
स्वरसादीनां परिभाषाः	,,
एषां बलवीर्यम्	,,
मतान्तरेण स्वरसादिकल्पना	६०–६१
तण्डुलोदकम्	६१
ज्येष्ठाम्बु	,,
मात्रापेक्षि भेषजगुणः	६२
मात्रायामपेक्षितानि	,,
मात्राया उत्तममध्यमाधम भेदाः	,,
विभिन्न भेषजमात्रा विनिश्चयः	६२–६३
अवस्थाभेदेन मात्रा निर्णयः	६३
प्रतिमर्षार्हावस्था	,,
दन्तधावनार्हवयः	,,
नस्यार्हवयः	,,
धूमकवल शुद्धियोग्यवयः	६४
पञ्चकर्म	,,

Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रतिमर्षप्रमाणम्	,,	विडालकः	,,
अवपीडप्रकारः	,,	आश्च्योतनम्	,,
नस्य मात्रा शुक्तिर्वा	,,	अञ्जनप्रकाराः	,,
शुक्तिप्रकारप्रमाणानि	६४–६५	अञ्जनार्हं शलाकाः	६६–६७
मतान्तरेण शुक्तिः	६५	अञ्जनकल्पना प्रकाराः	,,
विन्दुसञ्ज्ञाप्रमाणम्	,,	तर्पणविधिः	,,
प्रधमनम्	,,	तर्पण–संख्या	६७–६८
विभिन्नकर्मप्रयोगाः	,,	पात्रीकरण प्रभावविशेषः	,,
प्रतिसारणगण्डूषकवलाः	,,	पुटपाकविधिः	,,
नेत्ररोगेषु पञ्चकर्माणि	६६		

इति विषयानुक्रमणिका।

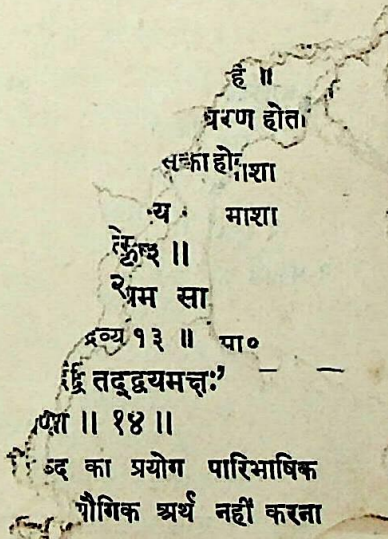

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आयुर्वेदीय-परिभाषा

के

परिशिष्ट विषयों की सूची

विषय	पृष्ठ
विविध मानों का सामञ्जस्य	६९
मागध या चरकोक्त मान	६९–७०
कालिङ्ग या सुश्रुतोक्त मान	,,
आधुनिक प्रचलित मान	७१
डाक्टरी मान Avoirdupois Weight.	,,
डाक्टरी तथा प्रचलित मान	,,
द्रव द्रव्यों का डाक्टरी मान	७२
शुष्क द्रव्यों का डाक्टरी मान Apothecaries Weight	,,
द्रवों के कुछ प्रचलित मान	,,
चूर्ण	,,
वटी	७३
[illegible]क	,,
[illegible] प्रभा[illegible]	
[illegible]क	७३–७४
[illegible]क [illegible]क्रिया	७४
	,,
	७५
	,,
	,,
	,,
	७६
	,,
	७६–७७
	७७

विषय	पृष्ठ
षडङ्गयूष तथा प्रमथ्या	,,
सूप	,,
वेसवार	७७–७८
षडङ्ग पानीय	७८
मद्य	,,
मद्यवर्ग के कतिपय द्रव्य	,,
शुक्त या चुक्र	७८–७९
काँजी	७९
कृशरा	,,
पायस या परमान्न	,,
उष्णोदक	,,
लेप	७९–८०
उपनाह	८०
गुदवर्ति	,,
स्फटिकीकरण	८१
अतितृप्त विलयन	,,
द्रव्यों के ग्रहणीय अङ्ग	८१–८२
ग्रहण-काल	८२
द्रव्य-संरक्षण-विधि	८२–८३
लाक्षा-रस	८३–८४
घृत तैल-मूर्च्छन	८४
घृत मूर्च्छन	,,
तिल तैल मूर्च्छन	८४–८५
एरण्ड तैल मूर्च्छन	८५
सर्षप तैल मूर्च्छन	८५–८६

Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

आयुर्वेदीयपरिभाषा

अथ मानप्रकरणम्

प्रणम्य सशिवां वाचं परिभाषाः प्रचक्ष्महे ।
अनुक्ताव्यक्त-लेशोक्त-सन्दिग्धार्थ-प्रकाशिकाः ॥ १ ॥

प्रकाशिका

अन्तरायमहितेश्वराऽऽश्रितोऽप्यन्तराय-तिमिराय भास्करः ।
मङ्गलं दिशतु मङ्गलोत्कया कोऽपि मञ्जुल-नवेन्दु-टीकया ॥ १ ॥

कल्याणकारी शिव तथा वाग्देवता को प्रणाम कर के उन परिभाषाओं का स्पष्ट वर्णन करते हैं—जिनका कि शास्त्रों में वर्णन नहीं है, जो अस्पष्ट हैं, जो कि अपूर्ण अर्थात् अधूरी हैं, एवं जिन के 'अर्थ ज्ञान' में सन्देह रह जाता है ॥ कि इन चारों प्रकार की (अनुक्त, अव्यक्त, लेशोक्त, सन्दिग्ध,) प्रकरण होता के पूर्ण-ज्ञान विना न तो ग्रन्थ की उपयोगिता का ही अनुभव हो सका होगा न किसी विज्ञान की ही पूर्ति हो सकती है ॥ १ ॥

नाऽमानेन प्रयोगोऽस्ति द्रव्याणां हि चिकित्सिते ॥
तस्मात् प्रथमतो मानमृषिभाषितमुच्यते ॥ २ ॥

मान या तौल के विना चिकित्साशास्त्र में किसी भी द्रव्य असम्भव है। क्यों कि जब तौल के विना साधारण दैनिक से नहीं चल सकते, फिर चिकित्सा-शास्त्र तो एक विज्ञान सब से पहले मान का वर्णन करते हैं और मानों का उल्लेख प्रथम करते हैं ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्मृतिशास्त्रे मनुनोक्तं—

'जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ ३ ॥

(८ अ० १३२–१३८ श्लो०)

स्मृतिशास्त्र में मनु ने कहा है—

'मकान के झरोखों (रोशनदार) में से जब सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं तब इन किरणों के साथ कुछ छोटे २ अत्यन्त सूक्ष्म धूलि के कण दिखायी पड़ते हैं। इनमें से एक कण को 'त्रसरेणु' कहते हैं। यह सब से पहला या प्रारम्भिक मान माना गया है ॥ ३ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ ज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजिसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ ४ ॥

आठ त्रसरेणु की एक लिक्षा और तीन लिक्षा की एक राई होती है तथा तीन राई के बराबर एक श्वेतसर्षप होता है ॥ ४ ॥

सर्षपाः षड् यवो मध्यस्त्रियवास्त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ५ ॥

६ सर्षप की तौल को 'मध्य-यव' कहते हैं। ३ यव एक कृष्णल या गुञ्जा (रत्ती) के बराबर होते हैं। पांच कृष्णल का १ माष और सोलह माष का एक [illegible] प्रमाण होता है ॥ ५ ॥

[illegible]क पलं सुवर्णश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
[illegible]कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ ६ ॥

[illegible] सुवर्ण का एक 'पल' और दश पल का 'धरण' माना गया [illegible] रत्ती) के मान को 'रौप्य माषक' कहते हैं ॥ ६ ॥

[illegible]श स्याद्धरणं पुराणञ्चैव राजतम् ।
[illegible]स्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ७ ॥

[illegible]' मिल कर एक धरण बनाते हैं। यह धरण राजत [illegible]राजत के नाम से भी प्रयुक्त होता है। 'कार्षापण' [illegible]—जिसे पण तथा ताम्रिक, कार्षिक भी कहते हैं। [illegible] के बराबर होता है। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

[illegible]asi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ ८ ॥

दश 'राजत-धरण' का एक 'राजत-शतमान' होता है । चार सुवर्ण का प्रमाण एक 'निष्क' कहलाता है ॥ ८ ॥

पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रन्त्वेव चोत्तमः' ॥ ९ ॥

२५० पण का मान 'प्रथम-साहस-दण्ड' ५०० पण का 'मध्यम-साहस-दण्ड' और १००० पण का मान 'उत्तम-साहस-दण्ड' कहलाता है' ॥९॥

धर्म्मशास्त्रे दण्डादिषु सुवर्णरजतताम्राणां कल्पनाऽभिहिता, तस्मात्तेषामिदं मानमुक्तं तदनुसारेणाविशेषेणोक्तम् । त्रसरेण्वादिधरणान्तं मानं स्वर्णादिसर्व्ववस्तूनां ज्ञेयम् । 'द्वे कृष्णले' इत्यादिश्लोकेन रौप्यस्य माषकधरणे विशेषेण ॥ १० ॥

धर्म शास्त्रों में—जहाँ कि दण्ड आदिक व्यवस्था का उल्लेख आता है सुवर्ण, रजत और ताम्र की कल्पना करना आवश्यक हो जाता है क्यों कि दण्ड विधान में ऐसे ही परिमाण उपयोगी पड़ते हैं । यहाँ पर उपरिनिर्दिष्ट मानों का वर्णन सामान्यतया उसी के अनुसार कर दिया गया है । यद्यपि 'त्रसरेणु' से लेकर 'धरण' तक वर्णित मान, स्वर्ण, रजत, ताम्र, सभी के हो सकते हैं तथापि द्वे कृष्णले'—इस षष्ठ श्लोक के उल्लिखित मान से केवल 'रौप्यमाष' ही ग्रहण किया जाता है ॥ १० ॥

'कार्षापण'स्त्वित्यादिना ताम्रस्य षोडशमाषाः कार्षापणो भवति । कार्षिकः, पण इत्येकोऽर्थः धर्म्मशास्त्रे व्यवहारार्थं ताम्रस्य अन्यत्र व्यवहारे तदनुसारेण षोडशमाषा एवाशीतिः कृष्ण ॥ कार्षिकः, कार्षापणः, पणश्चेष्यते । तत्र पणस्तु गुडकमाम सा न तु तौलेन । तत्र दशपलानि यद्धरणमुक्तं त १३ ॥ पा० रजतस्य शतमान उच्यते । चतुःसौवर्णिको रार्द्ध तद्द्वयमत्तः' रजतं निष्क उच्यते । रजतादन्येषां सुवर्णा ॥ १४ ॥ निष्क इति ॥ ११ ॥

'कार्षापणः—इत्यादि श्लोक द्वारा वर्णित मान यौगिक अर्थ नहीं करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोलह माषका होता है। इसके लिये कार्षापण, ताम्रिक, कार्षिक, पण, ये शब्द प्रयुक्त होते हैं। यह ताम्र के रूप में ही धर्मशास्त्र में व्यवहृत होता है। साधारण व्यवहार के लिये यह उसी के अनुसार १६ माष या ८० गुञ्जा के रूप में प्रयुक्त होता है। परन्तु यही 'पण' जब गुडक मान से लिया जाता है तब यह तोल की चीज़ नहीं रह जाता बल्कि गिनती का मान कहलाता है और अस्सी वस्तुओं के लिये आया करता है।

यहांपर जो दशपल का धरण कहा गया है उन दश धरणों का एक रजत-शतमान होता है चार सुवर्ण का राजत–निष्क होता है। इसी लिए 'पलमितं रजतं निष्कः'–द्वारा एक पल (४ सुवर्ण) का रजत–निष्क बतलाया गया है। परन्तु रजत के अतिरिक्त अन्य धातुओं का निष्क एक सुवर्ण के ही बराबर होता है। अत एव 'एकः सुवर्णो निष्कः' ऐसा कहा गया ॥ ११ ॥

प्रकाशन—मनुस्मृति के टीकाकार 'कुल्लूकभट्ट' दशपल के धरण को सुवर्ण का मान मानते हैं। यह ठीक है कि 'रजत-शतमग्न' को 'रजत-धरण' के मान से ही सम्बन्धित होना चाहिए, उसे सुवर्ण सम्बन्धी धरण से परिमित करना अवश्य नहीं जचता। इस लिये दशपलानि के स्थान पर 'राजतं' पाठ करके 'ते षोडश स्याद्धरणं' वाले राजत धरण से राजत शतमान को सम्बन्धित कर जटिलता दूर की जा सकती है। परन्तु संग्रहकर्ता उक्त धरण को केवल [illegible]प्रमाण ही मान नही मानते किन्तु 'स्वर्णादिसर्ववस्तूनां ज्ञेयम्' के अनुसार [illegible]क मानते हैं। इस लिये यह राजतमान भी हो सकता है।

[illegible]–निम्नतालिका द्वारा मनूक्तमान की आधुनिक मान से तुलना की गयी [illegible]साधारणतः व्यवहार में आने वाले मान-अङ्कों से ही प्रारम्भ की गयी है–

[illegible]नूक्त–माव	आधुनिक मान
[illegible] कृष्णल	= १ रत्ती
[illegible]षक	= ५ रत्ती
[illegible]र्ण तथा कार्षापण	= १० माशा
[illegible]तथा निष्क (राजत)	= ३ तो० ४ मा०
[illegible]ण	= ६ छ० ३ तो० ४ मा०

[illegible]asi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजत

मनूक्त-मान		आधुनिक मान
२ कृष्णल	= १ रौप्य माषक	= २ रत्ती
१६ रौप्य माषक	= १ धरण (राजत)	= ४ माशा
१० धरण (राजत)	= १ शतमान (राजत)	= ३ तो० ४ मा०
१० धरण(दशपलानि)	= १ शतमान ,,	= ६ छ० ३ तो० ४ मा०

नोट—आधुनिक मानक्रम परिशिष्ट में दिया गया है ।

स्मृतिशास्त्रे विष्णुसंहितायाञ्च–(४र्थअध्याये)

'जालस्थार्कमरीचिगतं रजस्त्रसरेणुसंज्ञकम्। तदष्टकं लिक्षा, तत्त्रयं राजसर्षपः, तत्त्रयं गौरसर्षपः, तत् षट्कं यवः, तत्त्रयं कृष्णलम्, तत् पञ्चकं माषः । तद्द्वादशकमक्षार्द्धम् । अक्षार्द्धमेव सचतुर्माषकं सुवर्णः, चतुःसुवर्णको निष्कः । द्वे कृष्णले समधृते रूप्यमाषकः, तत् षोडशकं धरणम् । ताम्रिकस्ताम्रकार्षिकः, कार्षापणः ॥ १२ ॥

विष्णु-संहिता में लिखा है:—

'झरोखों में सूर्य किरणों से चमकने वाले धूलि-कण को 'त्रसरेणु' कहते हैं । ८त्रसरेणु की लिक्षा, ३ लिक्षा की राई, ३ राई की श्वेत-सर्षप, ६ श्वेत-सर्षप का यव, ३ यव की गुञ्जा, ५ गुञ्जा का माष, १२ माष का अक्षार्द्ध, अक्षार्द्ध और ४ माष अर्थात् १६ माष का सुवर्ण और ४ सुवर्ण का निष्क होता है ॥

दो कृष्णल (रत्ती) का १ रूप्यमाषक और १६ रूप्यमाषक का १ धरण होता है । कार्षापण–जिसे ताम्रिक तथा ताम्रकार्षिक भी कहते हैं, १६ माष का होता है ।

पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रञ्चैव चोत्तमः ॥ १३ ॥

२५० पण का प्रथम साहस दण्ड, ५०० पण का मध्यम साहस और १००० पण का उत्तम साहस दण्ड माना गया है' ॥ १३ ॥

'अक्षार्द्धं द्वादशमाषकस्य संज्ञा, न त्वक्षस्यार्द्धे तद्द्वयमक्षः'

इति स्मृतिशास्त्रे व्यवहारार्थमियं संज्ञा ॥ १४ ॥

स्मृतिशास्त्र में व्यवहार के लिये 'अक्षार्द्ध' शब्द का प्रयोग पारिभाषिक शब्द के रूप में किया गया है । इस लिये इसका यौगिक अर्थ नहीं करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिये—जैसे-अक्ष का आधा 'अक्षार्द्ध' और दो अक्षार्द्ध मिल कर एक अक्ष—ऐसा समझना। यह १२ माशे का होता है ॥ १४ ॥

समन्वय—विष्णूक्त मान की आधुनिक मान से तुलना।

विष्णूक्त-मान		आधुनिक मान
३ यव	= १ कृष्णल	= १ रत्ती
५ कृष्णल	= १ माषक	= ५ रत्ती
१२ माषक	= १ अक्षार्द्ध	= ७ माशा ४ रत्ती
१६ माषक	= १ सुवर्ण तथा ताम्रिक कर्ष	= १० माशा
४ सुवर्ण	= १ निष्क	= ३ तोला ४ माशा
२ कृष्णल	= १ रौप्यमाषक	= २ रत्ती
१६ रौप्यमाषक	= १ धरण	= ४ माशा

विशेष—उपर्युक्त तालिकाओं में 'साहस दण्डों' का उल्लेख नहीं किया गया है। इनका मान, मनूक्त और विष्णूक्त दोनों ही समान हैं। पाठक गण पण-मान के अनुसार आधुनिक मान में परिवर्तित कर सकते हैं।

स्मृतिशास्त्रे याज्ञवल्क्यसंहितायाञ्च (१ प्रथमाऽध्याये)

'जालसूर्य्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतः।
तेऽष्टौ लिक्षाऽथ तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते ॥ १५ ॥

याज्ञवल्क्य-संहिता में लिखा है:—

'सूर्य की किरणों पर तैरते हुए धूलि-कण को 'त्रसरेणु' कहते हैं। आठ [illegible] की १ लिक्षा और ३ लिक्षा की १ राई होती है ॥ १५ ॥

गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्योऽथ ते त्रयः।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १६ ॥

[illegible]ई की श्वेत सर्षप, ६ सर्षप का यव, ३ यव का कृष्णल (गुञ्जा), [illegible]णल का माष और १६ माष का सुवर्ण होता है ॥ १६ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम्।
द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ॥ १७ ॥

चार अथवा पाँच सुवर्ण का एक पल माना गया है। २ गुञ्जा का रूप्यमाष और १६ रूप्य माष का धरण होता है ॥ १७ ॥

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शतमानस्तु दशभिर्धरणैः पलमेव च ।
निष्कः सुवर्णश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ॥ १८ ॥

१० धरण का १ रजत-शतमान होता है। पल तथा निष्क ४ सुवर्ण का होता है। ताम्रकृत मान कार्षिक या कार्षापण या पण कहलाता है। यह सुवर्ण के बराबर होता है ॥ १८ ॥

'साशीतिः पणसाहस्रो दण्ड उत्तम-साहसः ।
तदर्द्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धं प्रथमः स्मृतः' ॥ १९ ॥

१०८० पण का उत्तम साहस दण्ड, इससे आधा ५४० पण का मध्यम-साहस दण्ड और इससे आधा २७० पण का प्रथम साहसदण्ड माना गया है' ॥ १९ ॥

इति स्मृतिशास्त्रे दण्डादौ व्यवहारार्थं मानमुक्तं न त्वशेषं मान मुक्तम् ॥ २० ॥

स्मृति-शास्त्रों में ये मान दण्डादि व्यवहार के लिये साधारण वर्णित किये गये हैं ॥ २० ॥

तुलना—

याज्ञवल्क्योक्त मान		आधुनिक मान
३ मध्यम यव	= १ कृष्णल	= १ रत्ती
५ कृष्णल	= १ माषक	= ५ रत्ती
१६ माषक	= १ सुवर्ण	= १० माशा
४ सुवर्ण	= १ पल तथा निष्क	= ३ तोला ४ माशा
५ सुवर्ण	= १ पल	= ४ तोला २ माशा
२ कृष्णल	= १ रौप्यमाषक	= २ रत्ती
१६ रौप्यमाषक	= १ धरण	= ४ माशा
१० धरण	= १ शतमान (राजत)	= ३ तो० ४ मा०

आयुर्वेदे तु-चरकसंहितायां दृढबलेनोक्तम् (कल्प-१२ अ०) ॥२१॥

आयुर्वेद में तो दृढबलोक्त चरक संहिता के कल्पस्थान १२ अ० में इस तरह लिखा है ॥ २१ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'जालान्तरगते भानुकरे वंशी विलोक्यते ।
षड्वंश्यस्तु मरीचिः स्यात् षण्मरीच्यस्तु सर्षपः ॥ २२ ॥

'झरोखों द्वारा सूर्य किरणों पर दृश्यमान वस्तु (कण) को 'वंशी' कहते हैं। ६ वंशी की मरीचि और ६ मरीचि की १ राई होती है ॥ २२ ॥

अष्टौ ते सर्षपा रक्तास्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम् ।
धान्यमाषो भवेदेको धान्यमाषद्वयं यवः ॥ २३ ॥

८ राई का चावल, २ चावल का धान्य-माष और दो धान्यमाष का १ जौ होता है ॥ २३ ॥

अण्डका ते तु चत्वारस्ताश्चतस्रस्तु माषकः ।
हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तु ते त्रयः ॥ २४ ॥

४ यव का अण्डका (गुञ्जा), ४ अण्डका का माषक, और ३ माषक का शाण होता है। हेम और धानक ये माषक के पर्याय हैं ॥ २४ ॥

शाणौ द्वौ द्रङ्क्षणं विद्यात् कोलं वदरमेव च ।
विद्याद् द्वौ द्रङ्क्षणौ कर्षं सुवर्णञ्चाक्षमेव च ॥ २५ ॥
बिडालपदकञ्चैव पिचुं पाणितलं तथा ।
स एवं तिन्दुको ज्ञेयः स एव कवडग्रहः ॥ २६ ॥

२ शाण का द्रङ्क्षण, जिसे कोल और वदर भी कहते हैं, और २ द्रङ्क्षण का कर्ष होता है। सुवर्ण, अक्ष, विडालपदक, पिचु, पाणितल, तिन्दुक और कवग्रह ये सब कर्ष के पर्याय हैं ॥ २५-२६ ॥

द्वौ सुवर्णौ पलार्द्धं स्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ।
द्वे पलार्द्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका ॥ २७ ॥

२ सुवर्ण का पलार्द्ध-जिसे शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं, और २ पलार्द्ध का एक पल होता है। इसे मुष्टि, प्रकुञ्च और चतुर्थिका भी कहते हैं ॥ २७ ॥

बिल्वं षोडशिकञ्चाम्रं द्वे पले प्रसृतं विदुः ।
अष्टमानञ्च विज्ञेयं कुडवौ द्वौ च मानिका ॥ २८ ॥
पलञ्चतुर्गुणं विद्यादञ्जलिं कुडवं तथा ।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुःप्रस्थं तदाढकम् ॥ २९ ॥

बिल्व, षोडशिक और आम्र भी पल के लिये ही आते हैं। २ पल का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसृत या अष्टमान होता है । २ प्रसृत का कुडव और २ कुडव की मानिका होती है । इसे अञ्जलि भी कहते हैं । यह कुडव ४ पल का होता है । ४ कुडव का प्रस्थ और ४ प्रस्थ का आढक होता है ॥ २८-२९ ॥

घटश्चोक्तः स एव स्यात् कीर्त्तितोऽष्टशरावकः ।
पात्री पात्रं तथा कंसश्चत्वारो द्रोण आढकाः ॥ ३० ॥

आढक को घट भी कहते हैं । यह ८ शराव का माना गया है । पात्री, पात्र एवं कंस इस के पर्याय हैं । ४ आढक का एक द्रोण होता है ॥ ३० ॥

स एव कलसः ख्यातो घट उन्मानमर्म्मणम् ।
द्रोणस्तु द्विगुणः सूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च ॥ ३१ ॥

इसे कलस, घट, उन्मान और अर्म्मण भी कहते हैं । २ द्रोण का सूर्प या कुम्भ होता है ॥ ३१ ॥

गोणीं सूर्पद्वयं विद्याद् भारीं भारं तथैव च ।
द्वात्रिंशच्चैव जानीयाद्वाहं सूर्पाणि बुद्धिमान् ॥ ३२ ॥

२ सूर्प की गोणी जिसे खारी तथा भार कहते हैं और ३२ सूर्प का १ वाह होता है ॥ ३२ ॥

तुलां शतपलं विद्यात् परिमाणविशारदः ।
शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादि प्रकीर्त्तितम् ॥ ३३ ॥

१०० पल की १ तुला मानी गयी है । ये सभी मान शुष्क द्रव्यों के लिये कहे गये हैं ॥ ३३ ॥

द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं सद्यश्चैवोद्धृतेषु च ।
यत्र मानं तुला प्रोक्ता पलं वा तत् प्रयोजयेद् ॥

इस लिये द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों के लिये दुगुना करना आवश्यक होता है । तुला तथा पल द्वारा निर्दिष्ट द्रव्यों का प्रयोग शुष्क द्रव्यों के मान की तरह कर सकते हैं ।

त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ।
वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥ ३५ ॥
अर्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥

आर्द्र तथा द्रव पदार्थों के लिये प्रस्थ ३२ पल का माना जाता है और वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण में १३॥ पल का प्रस्थ ग्रहण करते हैं' ३५-३६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलना—चरकोक्त मान		आधुनिक मान
४ यव	= १ अण्डका	= २ रत्ती
४ अण्डका	= १ माषक	= १ माशा
३ माषक	= १ शाण	= ३ माशा
२ शाण	= १ द्रंक्षण	= ६ माशा
२ द्रंक्षण	= १ कर्ष	= १ तोला
२ कर्ष	= १ पलार्द्ध	= २ तोला
२ पलार्द्ध	= १ पल	= ४ तोला
२ पल	= १ प्रसृत	= ८ तोला
२ प्रसृत	= १ कुडव	= १६ तोला
२ कुडव	= १ मानिका	= ६ छ० २ तो०
२ मानिका	= १ प्रस्थ	= १२ छ० ४ तो०
४ प्रस्थ	= १ आढक	= ३ सेर ३ छ० १ तो०
४ आढक	= १ द्रोण	= १२ सेर १२ छ० ४ तो०
२ द्रोण	= १ शूर्प	= २५ सेर ६ छ० ३ तो०
२ शूर्प	= १ गोणी	= १ मन ११सेर ३ छ० १ ”
१०० पल	= १ तुला	= ५ सेर
३२ शूर्प	= १ वाह	= २० मन १६ सेर ३ छ० १ ”

सुश्रुते चोक्तं—(चिकित्सास्थान ३१ अध्याये)

'पलकुडवादीनामतो मानन्तु व्याख्यास्यामः ॥ ३७ ॥

सुश्रुत चिकित्सा स्थान ३१ अध्याय में पल-कुडवादि का व्याख्यान करते हुए लिखा गया है ॥ ३७ ॥

तत्र द्वादश धान्यमाषा मध्यमाः सुवर्णमाषकः ; ते षोडश सुवर्णः। अथ मध्यमनिष्पावा वा एकोनविंशतिर्धरणम् , तान्यर्द्धतृतीयानि कर्षः, ततश्चोर्द्ध्वं चतुर्गुणमभिवर्द्धयन्तः पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणा इत्यभिनिष्पद्यन्ते। तुलापलशतं वा विंशतिर्भारः शुष्काणामिदं मानमार्द्रद्रवाणाञ्च द्विगुणमिति' ॥ ३८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

१२ मध्यम धान्य माषों का १ सुवर्णमाष और १६ सुवर्णमाष का १ सुवर्ण होता है। १९ मध्यम-निष्पाव का १ धरण और २½ धरण का १ कर्ष होता है। इसके बाद उत्तरोत्तर चौगुना करते जाने से क्रमशः पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण बन जाते हैं। १०० पल की तुला और २० तुला का भार होता है। ये मान शुष्क द्रव्यों के लिये हैं। आर्द्र और द्रव द्रव्यों के लिये दुगुना करना चाहिये ॥ ३८ ॥

तुलना—

सुश्रुतोक्त मान		आधुनिक मान
१२ मध्यम-धान्य माष	= १ सुवर्णमाषक	= ५ रत्ती
१६ सुवर्णमाषक	= १ सुवर्ण	= १० माशा
१९ मध्यम-निष्पाव	= १ धरण	= १ मा० ७ र० २½ यव
२½ धरण	= १ कर्ष	= ४ मा० ७ र० २½ यव
१२ मध्यम-निष्पाव	= १ माषक	= १० रत्ती

विशेषः-सुश्रुतोक्त मान जटिल होने के कारण अधिक व्यवहार्य नहीं है। अतः कर्ष के अग्रिम मानों की तालिका नहीं दी गयी है। पाठक-गण स्वयं लगा सकते हैं।

तत्र चरके दृढबलेन यदुक्तं—

धान्यमाषद्वयं यवश्चत्वारो यवा अण्डका, चतस्रोऽण्डका माषक, इति षोडशयवा माषको भवति, धान्यमाषास्तु द्वात्रिंशत्, त्रयो माषकास्तु शाण इति, द्वौ शाणौ द्रङ्क्षणः, द्वौ द्रङ्क्षणौ कर्ष इति ॥ ३९ ॥

चरक में दृढबल ने कहा है—२ धान्यमाषों का यव, ४ यव का अण्डका और ४ अण्डका का माष होता है। इस प्रकार १६ यव का या ३२ उड़द का एक 'माषक' होता है। ३ माषक का शाण, २ शाण का द्रङ्क्षण और २ द्रङ्क्षण का कर्ष माना गया है ॥ ३९ ॥

सुश्रुते द्वादश मध्यमा धान्यमाषाः सुवर्णमाषकस्ते षोडशमाषकाः सुवर्ण इति कर्ष इति। चरकोक्तकर्षादर्द्धः सुश्रुतोक्तकर्षः। मन्वादिभिर्यो मध्यमयव उक्तस्तैस्त्रिभिर्मध्यमयवैरेकः कृष्णलः, पञ्च कृष्णलको माष इति। सुश्रुतोक्तेन द्वादशधान्यमाषात्मकमाषकेण तुल्यो भवति ॥ ४० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुश्रुत में १२ मध्यम धान्य माषक (साधारण उड़द) का सुवर्णमाष और १६ सुवर्णमाष का एक सुवर्ण या कर्ष होता है। इस लिये स्पष्ट है कि सुश्रुतोक्त कर्ष चरकोक्त कर्ष से आधा होता है। मन्वादि वर्णित ३ मध्यम यवों का एक कृष्णल और पांच कृष्णल का माष होता है। यह माष उस सुश्रुतोक्त माष के बराबर है जो १२ धान्यमाष का होता है ॥ ४० ॥

चरके तु धान्यमाषद्वयं यत्र इति यो यव उक्तः स बृहद्यवो मध्यमयवाद् द्विगुणः, इति द्वात्रिंशता धान्यमाषैः षोडश बृहद्यवा माषकः। सुश्रुते बृहद्धान्यमाषैर्द्वादशभिर्मध्यमाः पञ्चदश यवास्ते पञ्चकृष्णला भवन्ति, मन्वादिभाषितास्ते चरकोक्तबृहद्यवादर्धमिता भवन्तीति ॥ ४१ ॥

चरक में जो दो धान्यमाष का यव कहा गया है वह बृहद्-यव कहा जाता है। वह मध्यम-यव से दूना होता है। ३२ धान्यमाष (मध्यम) १६ बृहद्-यव के बराबर होते हैं जो कि १ माष बनाते हैं। सुश्रुत के १२ बृहद्-धान्य-माष साधारण १५ यव के समान होते हैं जिनको मनु आदि ने ५ कृष्णल (५ रत्ती) के बराबर माना है। ये चरक के बृहद्-यवों से आधे होते हैं ॥४१॥

चरके तु—

'मानञ्च द्विविधं प्राहुः कालिङ्गं मागधं तथा।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः' ॥ ४२ ॥

चरक में 'कालिङ्ग' तथा 'मागध' नाम से दो प्रकार के मानों का वर्णन किया गया है। विद्वानों का मत है कि कालिङ्ग से मागध श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥

इत्यतो माषकः कृष्णलैर्दशभिरुक्तः। सुश्रुतेन द्विविधमेव मानमुक्तम्। मध्यमधान्यमाषैर्द्वादशभिर्माषकः पञ्चकृष्णलको माषकः। अथ मध्यमनिष्पावा वेति वचनेन द्वादशमध्यमनिष्पावा माषक इति दशकृष्णलको माषक इति। एषां सर्व्वेषां मतानामैक्यं विधायाह कश्चित् ॥ ४३ ॥

चरक में दश कृष्णल का १ माष बताया गया है। परन्तु सुश्रुत में दोनों ही प्रकार के मानों का वर्णन है- जैसे, ५ कृष्णल का माष जो १२ मध्यमधान्य माषों का होता है और १० कृष्णल का माष, जो १२ मध्यमनिष्पावों का होता है। इसी लिये सब का समन्वय करते हुए किसी ने कहा है ॥ ४३ ॥

मानन्तु द्विविधं ज्ञेयं कालिङ्गं मागधं तथा।
पञ्चकृष्णलमाषेण कालिङ्गं मानमीरितम् ॥ ४४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्वादिभिर्धर्म्मशास्त्रे व्यवहर्तुं क्रियाविधौ ।
तच्चोक्तं सुश्रुतेनापि व्यवहर्तुं चिकित्सिते ॥ ४५ ॥

कालिङ्ग और मागध दो प्रकार के मान होते हैं जिसमें कि कालिङ्ग मान में ५ कृष्णल (५ रत्ती) का माष होता है। मनु आदि धर्मशास्त्र के प्रणेताओं ने कार्य-व्यवहार के लिये और सुश्रुत ने चिकित्सा-व्यवहार के लिये मान का वर्णन किया है ॥ ४४-४५ ॥

मागधञ्च तथैवेष्टं चरकेण मागधं मतम् ।
येन केनापि मानेन व्यवहारो न दुष्यति ॥ ४६ ॥

महर्षि चरक ने मागधमान को ही अभीष्ट और उत्तम समझा। परन्तु यह निःसन्देह है कि किसी भी मान का प्रयोग करने से व्यवहार में दोष नहीं आता ॥

यथायोगोक्तमानञ्चेत् भेषजेषु प्रयोजयेत् ।
क्रियाविधौ तु मात्राया नास्त्यवस्थितिरेव हि ॥ ४७ ॥
दोषाग्नि-व्याधि-तबल-वयः-कोष्ठाद्यपेक्षया ।
मात्राप्रयोगो हि हितो माषादिनियमोऽत्र न ॥ ४८ ॥

यद्यपि योग में वर्णित मान का प्रयोग ओषधियों में किया जाता है तथापि चिकित्सा-विधान में किसी निश्चित मात्रा की अपेक्षा नहीं रहती क्यों कि रोगी के दोष, अग्नि एवं बल, वय, कोष्ठ आदि का विचार करके मात्रा का प्रयोग करना हितकर होता है। इस लिये तोला, माशा का कोई सार्वत्रिक नियम नहीं किया जा सकता ॥ ४७-४८ ॥

यत्र मात्रोदिता तत्राप्येष एव विधिः स्मृतः ।
स्थूलतः शिष्यबोधार्थं सा सा मात्रा प्रदर्शिता ॥ ४९ ॥

जहां पर योग में मात्रा बतला दी जाती है वहां भी यह उक्त विचार करना आवश्यक होता है क्यों कि मात्रायें केवल साधारण बोध के लिये लिख दी जाती हैं नकि सार्वत्रिक प्रयोग के लिये ॥ ४९ ॥

पञ्चकृष्णलको माषो दशकृष्णलकस्तथा ।
स्याद् द्वादश कृष्णलको गौडे देशे तु माषकः ।
चतुर्दश कृष्णलको माषकः क्वापि चेष्यते ॥ ५० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यों कि मानों में बड़ा अन्तर होता है—जैसे, कहीं ५ गुञ्जा का माष, कहीं १० गुञ्जा का, कहीं १२ गुञ्जा का-जैसे गौडदेश में, और कहीं १४ गुञ्जा का माष होता है ॥ ५० ॥

कचिच्च षट्कृष्णलकः सप्तकृष्णलकः कचित्
सर्वत्रैव चतुर्माषः शाणः कोलोऽष्टमाषकः ॥ ५१ ॥

इसी तरह कहीं ६ गुञ्जा का और कहीं ७ गुञ्जा का माष होता है। शाण सभी जगह ४ माष का और कोल ८ माष का होता है ॥ ५१ ॥

तोलकं बदरञ्चापि द्रङ्क्षणं वटकं तथा ।
तोलद्वयन्तु कर्षः स्यात् कोलोऽप्युडुम्बरं पिचुः ॥ ५२ ॥
पाणिः पाणितलं बिन्दुस्तिन्दुकं कवडग्रहः ।
किञ्चिद् विडालपदकं सुवर्णो लम्बमेव च ॥ ५३ ॥

कोल के लिये तोलक, वदर, द्रङ्क्षण और वटक का भी प्रयोग करते हैं। दो तोलक का कर्ष होता है। इसे कोल, उडुम्बर और पिचु भी कहते हैं। पाणि, पाणितल, बिन्दु, तिन्दुक, कवडग्रह, बिडालपदक, सुवर्ण, लम्ब, ये भी कोल के ही नाम हैं ॥ ५२-५३ ॥

प्रकाशन—दो कोल (तोले) का १ कर्ष होता है इस लिये कर्ष को भी 'कोल' कहना भारी भ्रम में डाल सकता है। वस्तुतः 'कोलोऽप्युडुम्बरं पिचुः' यहां पर संस्कर्ताओं की कुछ भूल हो गयी है और इसीलिये कुछ छन्दोभङ्ग भी मालूम पड़ता है। यदि 'टङ्कार्द्धोदुम्बरे पिचुः' ऐसा पाठ कर दिया जाय तो दोनों त्रुटियां दूर हो सकती हैं।

कर्षद्वयन्त्वष्टमिका निष्कष्टङ्कः शुक्तिरपि ।
शुक्तिद्वयं पलं मुष्टिः प्रकुञ्चश्च चतुर्थिका ॥
बिल्वं षोडशिकञ्चाम्रं द्वेपले प्रसृतं मतम् ॥ ५४ ॥

दो कर्ष की अष्टमिका होती है इसे निष्क, टङ्क और शुक्ति भी कहते हैं। दो शुक्ति का १ पल और दो पल का प्रसृत होता है। मुष्टि, प्रकुञ्च, चतुर्थिका, बिल्व, षोडशिक और आम्र ये पल के नाम हैं ॥ ५४ ॥

अष्टमानं च प्रसृतद्वयं स्यात् कुडवोऽञ्जलिः ।
कुडवौ द्वौ मानिका स्याच्छरावश्चापि कीर्त्तितः ॥ ५५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२ प्रसृत का अष्टमान या कुडव या अञ्जलि और दो कुडव की मानिका या शराव माना गया है ॥ ५५ ॥

द्वौ शरावौ भवेत् प्रस्थो द्विप्रस्थोऽर्द्धाढको मतः।
तौ तु द्वावाढको ज्ञेयः स एवाष्टशरावकः ॥ ५६ ॥

२ शराव का प्रस्थ, २ प्रस्थ का अर्द्धाढक, २ अर्द्धाढक का आढक या अष्ट-शरावक होता है ॥ ५६ ॥

पात्री पात्रं घटः कंसस्तौ द्वौ द्रोणार्द्धमुच्यते।
चत्वार आढका द्रोणः स द्वात्रिंशच्छरावकः।
स एव कलसः ख्यातो घट उन्मानमर्म्मणम् ॥ ५७ ॥

पात्री, पात्र, घट, कंस ये आढक के नाम हैं। २ आढक का द्रोणार्ध, ४ आढक का द्रोण जो ३२ शराव का होता है। कलस, घट, उन्मान और अर्मण भी कहा जाता है ॥ ५७ ॥

प्रकाशन—आढक को भी घट और द्रोण को भी घट जो आढक से चौगुना है लिखा गया है। चिकित्सा-शास्त्र जैसे जीवन-मरण सम्बन्धी विज्ञान की महती शाखा में ऐसी भूल भयङ्कर नाश का कारण बन सकती है। इस लिये प्रथम घट के स्थान पर 'घटी' पाठ कर देना उचित होगा।

द्रोणद्वयन्तु सूर्पः स्यात् कुम्भश्च परिकीर्त्तितः।
सूर्पद्वयन्तु गोणी स्यात् खारी गोणीद्वयं मता ॥ ५८ ॥

२ द्रोण का सूर्प या कुम्भ, २ सूर्प की गोणी और दो गोणी की खारी मानी गयी है ॥ ५८ ॥

खारी तु भार एवोक्तश्चरके सुश्रुते पुनः।
तुला पलशतं ताभिर्विंशत्या भार उच्यते ॥ ५९ ॥

चरक ने खारी को ही भार का नाम दिया है और सुश्रुत में १०० पल की तुला और २० तुला का भार माना गया है ॥ ५९ ॥

द्वात्रिंशच्चैव सूर्पाणि चरके वाह उच्यते ॥ ६० ॥

चरक में ३२ शूर्प का 'वाह' माना गया है ॥ ६० ॥

शाणः कोलश्च कर्षश्च शुक्तिश्च पलमेव च।
प्रसृतं कुडवश्चापि शरावः प्रस्थ एव च ॥ ६१ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्द्धाढकश्चाढकोऽर्द्धद्रोणश्च द्रोण एव च ।
सूर्पो गोणी च खारी च द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ॥ ६२ ॥

शाण, कोल, कर्ष, शुक्ति, पल, प्रसृत, कुडव, शराव, प्रस्थ, अर्द्धाढक, आढक, अर्द्धद्रोण, द्रोण, सूर्प, गोणी,—ये क्रमशः उत्तरोत्तर, एक दूसरे से दूने होते जाते हैं ॥ ६२ ॥

माष-शाण-कर्ष-पल-कुडव-प्रस्थकाढकाः ।
द्रोणो गोणी भवन्त्येते पूर्व्वपूर्व्वाच्चतुर्गुणाः ॥ ६३ ॥

माष, शाण, कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, गोणी इनमें क्रमशः पहले से दूसरा चौगुना हो जाता है ॥ ६३ ॥

शुष्काणां स्यादिदं मानं द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ।
न द्वैगुण्यं तुलामाने पलोल्लेखागते तथा ॥ ६४ ॥

ये मान शुष्क द्रव्यों के लिये प्रयुक्त होते हैं । द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों के लिये दूना करना पड़ता है परन्तु यदि मान में तुला या पल का उल्लेख हो तो दूना नहीं किया जाता ॥ ६४ ॥

चरके ह्युक्तं—

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादि प्रकीर्तितम् ।
द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं सद्य एवोद्धृतेषु च ।
यत्र मानं तुला प्रोक्ता पलं वा तत् प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

चरक ने कहा है—यह शुष्क द्रव्यों का मान है । द्रव तथा तुरन्त उपारी बनस्पतियों के लिए दूना किया जाता है । परन्तु तुला तथा पल को दूना नहीं करना चाहिए ॥ ६५ ॥

इह तत् प्रयोजयेदित्यनेनाद्वैगुण्येनैव तुलोल्लेखागतं पलोल्लेखागतञ्चार्द्रं द्रवञ्च द्रव्यं प्रयोजयेदिति ख्यापितम् । इत्येवं सुश्रुतचरकयोर्वचनेन रक्तिमाषकादौ सर्व्वत्र द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यमवेक्षमाणः कश्चिदुवाच ॥ ६६ ॥

इस प्रकार तुला और पल के लिये चरक ने भी द्विगुण का निषेध किया है । इसीलिये चरक सुश्रुत के वचनानुसार रत्ती, माषा आदि को द्रवार्द्र द्रव्यों के लिये सर्वत्र द्विगुण बतलाते हुये किसी ने कहा है ॥ ६६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'शुष्कद्रव्येषु यन्मानमार्द्रस्य द्विगुणं हि तत् ।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वं तस्माद्दद्धं प्रयोजयेत् ॥६७॥' इति ॥

शुष्कद्रव्यों का मान आर्द्र द्रव्यों के लिये दूना प्रयुक्त होता है । क्यों कि—शुष्क पदार्थ गरिष्ठ और तीखे होते हैं-इसलिये आधे डाले जाते हैं ॥ ६७ ॥

एतद्वचनेनापि रक्तिमाषकादौ शुष्कापेक्षयाल्पवीर्य्यत्वाद् द्वैगुण्यमार्द्र-द्रव्यस्य सिद्धम् ॥ ६८ ॥

इस वचन से यह सिद्ध है कि आर्द्र द्रव्य शुष्क द्रव्यों की अपेक्षा अल्पवीर्य होते हैं । जब रत्ती, माषा की मात्रा में प्रयोग करना होता है तब एक तो वैसे ही कम रहते हैं दूसरे अल्पवीर्य, इसलिये दूना करना आवश्यक है' ॥ ६८ ॥

यच्च पुनरिदमन्येनोक्तम् ।
'रक्तिकादिषु मानेषु यावन्नो कुडवो भवेत् ।
शुष्कद्रवार्द्रयोश्चापि तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम् ॥ ६९ ॥
द्विगुणं कुडवादूर्ध्वं शुष्कान्मानं द्रवार्द्रयोः ।
लघुत्वादल्पवीर्य्यत्वाज्ज्ञेयमन्यत्र तत् समम्' ॥ ७० ॥ इति ॥

किसी का मत है—'रत्ती से कुडव तक, द्रव, आर्द्र तथा शुष्क सभी द्रव्य समान लेना चाहिए और कुडव के बाद द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों को शुष्क से दूना लेना चाहिए । क्यों कि वे लघु और अल्पवीर्य होते हैं । अन्यत्र सर्वत्र बराबर लेना ठीक है' ॥ ६९-७० ॥

एवमपरेणोक्तं यदिदम् ।
'द्विगुणं कुडवादौ तु प्रस्थादिश्रुतिमानतः' ॥ ७१ ॥ इति ॥

दूसरों का मत है कि कुडव प्रस्थ आदि में दूना लिया जाय ॥ ७१ ॥

तथैवापरेणोक्तम् ।
'प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं स्याद् द्रवार्द्रयोः ।
कुडवेऽपि क्वचिद् द्वित्वं यथा दन्तीघृते घृतम्' ॥ ७२ ॥ इति ॥

अन्य मत, प्रस्थ से लेकर द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों का द्विगुण और क्वचित् कुडव में भी जैसे दन्तीघृत में, द्विगुण का समर्थन करता है ॥ ७२ ॥

एवञ्चापरेणाप्युक्तम् ।
'मानिका कुडवश्चैव या वा संख्या पलैः कृता ।
आर्द्रद्रव्ये द्रवद्रव्ये न द्वैगुण्यं तुलागते' ॥ ७३ ॥ इति ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain: Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चौथा मत, मानिका, कुडव, पल और तुला द्वारा परिमित किये गये आर्द्र तथा द्रवों को दूना करने का निषेध करता है ॥ ७३ ॥

तत्तु सर्व्वमसम्यक् युक्तिविरोधात् । लघुत्वादल्पवीर्य्यत्वादिति हेतुवचनाच्च । किं हि कुडवादिषु द्रवद्रव्येष्वार्द्रद्रव्येषु लघुत्वमल्पवीर्य्यत्वञ्च न रक्तिकमाषकादौ वर्त्तते । यत्तु द्रव्यं लघु चाल्पवीर्य्यञ्च तद्रक्तिकमाषकादिमानेषु कुडवादिमानेषु च तुल्यं भवति । रक्तिकमाषकादिमानेषु गुरुत्वपूर्णवीर्य्यत्वे कुडवादिमानेषु लघुत्वाल्पवीर्य्यत्वे कारणाभावात् । तस्माद्रक्तिकादिषु कुडवादूर्ध्वेषु च सर्व्वत्रैव द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यं युक्तिसिद्धं चरकसुश्रुतवचनप्रमाणसिद्धञ्च बोध्यमिति ॥ ७४ ॥

परन्तु उक्त सभी मत असङ्गत हैं क्यों कि उनमें कोई भी युक्ति नहीं संगत हो लघुत्व और अल्पवीर्यत्व का हेतु भी उसे गलत करता है जो लघुत्व और अल्पवीर्यत्व कुडवादि परिमित द्रवार्द्र द्रव्यों में रहता है वह रक्तिकादि परिमित द्रव्यों में कहाँ चला जायगा ? जो द्रव्य लघु और अल्पवीर्य हैं उन्हें चाहे जिस मानसे तौलो (रत्ती या कुडव) उसका लघुत्व और अल्पवीर्यत्व नहीं नष्ट होगा । कोई द्रव्य जब रत्ती माषा से तोला जाय गुरु तथा पूर्णवीर्य हो और कुडव आदि में तौलने पर लघु और अल्पवीर्य हो जाय—इसका कोई कारण नहीं है । इसलिये रक्तिकादिकों में और कुडव के ऊपर भी सभी जगह द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों का दूना लेना ही युक्तिसिद्ध और चरक-सुश्रुताभिमत है ॥ ७४ ॥

सुश्रुते तु स्नेहकुडवे त्वद्वैगुण्यं विशेषेणोक्तम् । तद्यथा ॥ ७५ ॥

सुश्रुत में 'स्नेह कुडव' के लिये दूने का निषेध किया गया है ॥ ७५ ॥

'स्नेहकुडवे भेषजपलं पिष्टं कल्कं चतुर्गुणं द्रवञ्चावाप्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः' इति ॥ ७६ ॥

'स्नेह कुडव में १ पल ओषधि का कल्क चौगुने द्रव में पकालें । यह स्नेहपाक का विधान है' ॥ ७६ ॥

न च खल्वेतेन सर्व्वत्र द्रवद्रव्ये कुडवमाने द्वैगुण्याभावः सुश्रुताभिमतः । स्नेहकुडवेऽपि द्वैगुण्याभावः प्रायिकः । दन्ताघृते घृतस्य द्वैगुण्यविधानात् । एतेन भेषजविधौ द्विविधद्रव्यप्रयोग उक्तः शुष्कद्रव्याणामार्द्रद्रव्याणाञ्च नूतनानां पुरातनानाञ्च ॥ ७७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त विधान का अर्थ यह नहीं है कि सुश्रुत में कुडवपरिमित द्रव द्रव्यों में दूने करने का निषेध सभी जगह किया गया है, बल्कि उक्त नियम स्नेह कुडव में भी सब जगह लागू नहीं होता। जैसे—दन्तीघृत में दूने का विधान है। इस प्रकार ओषधि कल्पना में शुष्क और आर्द्र अथवा नूतन और पुराण, दो प्रकार के द्रव्यों का प्रयोग बतलाया गया है ॥ ७७ ॥

तत्रोक्तम्—

'द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्यानि क्रियाविधौ।
ऋते गुडघृत-क्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गतः' ॥ ७८ ॥ इति ॥

कहा गया है—चिकित्सा-कार्य में नवीन द्रव्यों का ही प्रयोग उत्तम होता है। परन्तु गुड़, घी, मधु (शहद), धान्य, पिप्पली और विडङ्ग पुराने ही व्यवहृत होते हैं।

संवत्सरातीतत्वे हि द्रव्याणां पुराणता भवति। तत्र सर्पिषोऽपक्वस्य यथा यथा पुराणत्वं तथा तथा प्राशस्त्यं न त्वन्येषाम्। येषान्तु द्रव्याणामार्द्रतायामेव नियमतः प्रयोगो न शुष्कतायां तान्युक्तान्यन्यत्र ॥ ७९ ॥

एक साल बाद द्रव्यों में पुरानापन आ जाता है। अपक्व घृत जितना ही पुराना होता है उतना ही अच्छा माना जाता है। परन्तु यह बात अन्य द्रव्यों के लिये लागू नहीं होती। जिन द्रव्यों का गीली अवस्था में ही प्रयोग होता है शुष्कावस्था में नहीं वे अन्यत्र कहे जायँगे ॥ ७९ ॥

'वासानिम्बपटोलकेतकिबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी-
वर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहिता द्वे पूतिगन्धामृते।
मांसं नागबला-सहाचरपुरौ हिङ्ग्वार्द्रके नित्यशो
ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेक्षुजाता घनाः' ॥ ८० ॥

अडूसा, नीम, परवर, केवड़ा, बरिआरा (खरेटी), कुम्भेर (पेठा), शतावरी, सांठ (त्रायमाण) अथवा पुनर्नवा, कुड़ैया, असगन्ध, प्रसारिणी, गुर्च, मांस, नागबला (भूमिबला या गङ्गेरन), कटसरैया (पियावासा), गुग्गुल, हिङ्ग, अदरख, और ईख से बने घन द्रव्य हमेशा गीलेही लेना चाहिए परन्तु दूने नहीं ॥ ८० ॥

एषां शुष्कत्वे प्रयोगाभावात् सद्य एवोद्धृतत्वेन नियमतः प्रयोगाद् द्वैगुण्यं, येषां हि शुष्कत्वे प्रयोगोऽस्ति तेषां सद्य उद्धृतानां द्वैगुण्यमित्यभिप्रायेण दृढबलेनोक्तमिति ॥ ८१ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त द्रव्यों का शुष्कावस्था में प्रयोग नहीं किया जाता-किन्तु सर्वदा नवीन का ही नियम है। इसलिये आर्द्रावस्था में भी इनका वही महत्व है जो शुष्कावस्था में होना चाहिये। यही कारण है कि इन्हें दूना नहीं करते। जिन पदार्थों का शुष्कावस्था में भी प्रयोग होता है, उन्हें आर्द्रावस्था में दूना कर देना चाहिए-यह दृढबल को भी अभिप्रेत है ॥ ८१ ॥

द्विगुणं तद् द्रवेष्विष्टं सद्य एवोद्धृतेषु च ॥ ८२ ॥

द्रव तथा तुरन्त उखाड़ी हुई ओषधियां दूनी लेनी चाहिये ॥ ८२ ॥

वेणुकाष्ठायसादीनां भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णमथ वृत्तञ्च कुडवं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८३ ॥ इति ॥

इति मानप्रकरणम् ।

बाँस अथवा अन्य काष्ट या लोह आदि का निर्मित पात्र, जिसका विस्तार तथा गोलाई चार-चार अङ्गुल हो, 'कुडव' कहलाता है ॥ ८३ ॥

इति प्रकाशितं प्रकाशिकया मानप्रकरणं नाम प्रथमं प्रकरणम् ।

अथानुक्तप्रकाशनम्

भागेष्यनुक्ते समता विधेया कालेष्यनुक्ते दिवसस्य पूर्व्वम् ।
अङ्गेष्यनुक्ते विहितन्तु मूलं द्रवेष्यनुक्ते जलमेव देयम् ॥ १ ॥

जहाँ द्रव्यों की मात्रा न दी गयी हो वहाँ समान भाग से ग्रहण करना चाहिए अर्थात् सब द्रव्य बराबर २ लेना चाहिए और समय का उल्लेख न होने पर प्रातः काल समझना चाहिए। द्रव्य के ग्राह्य अङ्ग का वर्णन न होने पर मूल (जड़) और द्रव द्रव्य का नाम न होने पर जल ग्रहण करना चाहिए ॥ १ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च ।
तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ २ ॥

बड़ी और कठीली जड़ों की छाल एवं छोटी जड़ें सम्पूर्णतः लेनी चाहिए ॥२॥

अथ सुश्रुते—

अनुक्ते द्रवकार्य्ये तु सर्व्वत्र सलिलं मतमिति ॥ ३ ॥

'सुश्रुत' ने कहा है—'द्रव की आवश्यकता बतला कर भी जब द्रव का नाम नहीं दिया होता है तब सभी जगह जल का ही ग्रहण किया जाता है' ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चरके च—

'द्रवकार्य्येप्यनुक्ते तु सर्व्वत्र सलिलं मतम्।
यत्रैव पादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्च सः॥ ४॥
जलस्नेहौषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्'॥ ५॥ इति।

चरक ने भी लिखा है—द्रव कार्य वतला कर भी जव द्रव के नाम का उल्लेख नहीं रहता तव जल का ग्रहण होता है। 'पाद' शब्द से १/४ या चौथाई का ग्रहण होता है। जहाँ पर जल, स्नेह और ओषधि का प्रमाण नहीं दिया होता है वहां पर औषध से चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना जल लिया जाता है॥ ४–५॥

सुश्रुते च—

स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कस्तदेकध्यं संसृज्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः। स्नेहकुडवे भेषजपलं पिष्टं कल्कं चतुर्गुणं द्रवञ्चावाप्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः॥ ६॥

इसीलिये सुश्रुत ने लिखा है—स्नेह का १/४ भाग (चौथाई) ओषधि कल्क और स्नेह से चौगुना द्रव, एकत्र मिलाकर पकाने से 'स्नेहपाक' बनता है। उदाहरणार्थ—१ कुडव यानी ४ पल स्नेह में, १ पल ओषधि कल्क और चौगुना अर्थात् १६ पल द्रव मिलाकर पकाने से 'स्नेहपाक' सम्पन्न होता है॥६॥

भवति चात्र—

स्नेह-भेषज-तोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु॥ ७॥ इति॥

ठीक कहा गया है कि जहाँ पर ओषधि, स्नेह और जल का प्रमाण वर्णित नहीं रहता वहाँ पर यही उक्तविधि काम में लानी चाहिए। परन्तु जहाँ पर मान का वर्णन विहित रहता है वहाँ उसी विहित मान के अनुसार ग्रहण करना आवश्यक है॥ ७॥

'भागेप्यनुक्ते समता विधेये'ति समभागविधानस्यापवादः स्नेहसाधने कल्कचतुर्गुणः स्नेहः, स्नेहचतुर्गुणो द्रवः, सुश्रुतदृढबलाभ्यामुक्तः। तत्र हि तोयशब्दो द्रवद्रव्यमात्रे विवक्षितः सुश्रुतेनोक्तत्वात्। स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रव इत्यस्य॥ ८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाग का उल्लेख न होने पर समान भाग लेने का नियम है। परन्तु स्नेह-पाक इसका अपवाद है। क्यों कि स्नेह-साधन में समान भाग न लेकर कल्क से चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना द्रव लिया जाता है जैसा कि सुश्रुत तथा चरक ने कहा है। चरक ने जो 'तोय' शब्द का ग्रहण किया है वह केवल जल के लिये नहीं बल्कि द्रवमात्र के लिये है। सुश्रुत ने भी स्नेह से चौगुना द्रव लेना चाहिये—ऐसा ही माना है ॥ ८ ॥

तत्र जिज्ञास्यं—

'स्नेहचतुर्गुणो द्रव' इति यदुक्तं तत् किमेकस्य द्रवस्याथ किं द्वयोरथवा त्रयाणां चतुःप्रभृतीनां सर्व्वेषामिति ? ॥ ९ ॥

यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि जब एकयोग में एक, दो, तीन या ४ द्रवों का उल्लेख हो तब सब द्रवों को मिला कर स्नेह से चौगुना होना चाहिए या प्रत्येक को अलग २ चौगुना ग्रहण करना चाहिए ॥ ९ ॥

तत्राह कश्चित्—

एकेनापि द्रवेण चातुर्गुण्यम्, द्वाभ्याञ्च चातुर्गुण्यम् त्रिभिरपि चातुर्गुण्यं, चतुर्भिस्तु सममिति चातुर्गुण्यम् ॥ १० ॥

इस विषय में किसी ने लिखा है—यदि एक द्रव हो तो चौगुना और दो हों तो दोनों मिला कर तथा तीन हों तो तीनों मिला कर चौगुने होने चाहिए। चार द्रव तो प्रत्येक बराबर लेने से चौगुने हो जाते हैं ॥ १० ॥

इत्येवमेकद्वित्रिद्रवद्रव्येषु चतुर्गुणत्वन्यूने स्नेहसाधनप्रतिषेधार्थं 'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रव' इति सुश्रुतः, 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणमि'ति दृढबल उक्तवान् ॥

इस प्रकार स्नेह साधन के लिये एक, दो या तीन द्रवों के होने पर भी उन्हें स्नेह से चौगुना ही लेना चाहिए। क्यों कि चतुर्गुण से कम का प्रतिषेध करने के लिये ही 'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः' ऐसा सुश्रुत ने और 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणं' ऐसा चरक ने लिखा है ॥ ११ ॥

न तु पञ्चप्रभृतिद्रवेषु चतुर्गुणाधिक्ये प्रतिषेधार्थम्। तत्र 'भागेष्यनुक्ते समता विधेये'ति परिभाषया स्नेहसमत्वं प्रत्येकमिति। अथैवञ्चेत्तर्हि यत्र क्षीरमेकमेव द्रवं तत्र क्षीरमेव चतुर्गुणं भवति, भवतु। यत्र तु क्षीरञ्चापरञ्च द्रवमेकं द्वयं वा तत्र किं क्षीरेण सहापरेणैकेन द्रवेण चातुर्गुण्ये कर्त्तव्ये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo Grant-2

समता क्षीरापरयोः कर्त्तव्या ? तथात्वे क्षीरं द्विगुणं द्रवान्तरञ्च द्विगुणं भवति । क्षीरेण सह चापरयोश्चातुर्गुण्ये च किं समता कर्त्तव्या ? तत्र त्रयाणां चातुर्गुण्ये कृते प्रत्येकं समत्वमिति ॥ १२ ॥

उक्तवाक्य (जिसमें कि द्रव स्नेह से चौगुना कहा गया है) चार से अधिक (५ या ६ आदि) द्रवों के लिये न तो लागू ही होता है और न चतुर्गुण से अधिक होने का निषेध ही करता है । इस लिये ४ से अधिक होने पर 'भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया' इस नियम के अनुसार प्रत्येक द्रव स्नेह के बराबर २ ही लिया जाता है । द्रव–चातुर्गुण्य परिभाषा के अनुसार यदि क्षीर भी अकेला हो तो स्नेह से चौगुना ही लिया जाता है । परन्तु जहां पर क्षीर के अतिरिक्त कोई अन्य द्रव भी वर्तमान रहता है वहां पर क्या क्षीर के साथ ही उक्तद्रव का चौगुना अर्थात् क्षीर का दूना और द्वितीय द्रव का दूना करना चाहिए ? एवं जहां पर क्षीर के सिवा दो अन्य द्रव हों वहाँ पर भी क्या पूर्ववत् क्षीर के साथ ही दोनों का चौगुना यानी तीनों को बराबर २ मिला कर चौगुना करना चाहिए ?

तत्राह नैवं क्षीरे विशेषवचनात् तद्यथा ॥ १३ ॥

ऐसा नहीं होगा क्योंकि क्षीर के विषय में विशेषता है । जैसे कि—॥ १३ ॥

यत्र द्रवान्तरं नोक्तं तत्र क्षीरं चतुर्गुणम् ।
द्रवान्तरप्रयोगे तु क्षीरं स्नेहसमं मतम् ॥ १४ ॥ इति ।

जब कि स्नेह–साधन में केवल क्षीर का उल्लेख रहता है तथा अन्य कोई द्रव नहीं रहता तब क्षीर चौगुना लेकिन अन्य द्रव के प्रयोग होने पर स्नेह के समान ही लिया जाता है ॥ १४ ॥

नन्वेतेन द्रवान्तरप्रयोगे क्षीरस्य स्नेहसमत्ववचनेन तत्र यद्द्रवान्तरमेकं द्वयं त्रयं वा तत् किं क्षीरं विनैकेन चातुर्गुण्यं, द्वाभ्यामपि चातुर्गुण्यं त्रिभिरपि चातुर्गुण्यं चतुर्भिः समामिति चातुर्गुण्यं कर्त्तव्यमथ किं क्षीरेण सहैव ? क्षीरेण सह द्रवान्तरमेकं यत्र तत्र विशेषोक्त्या किं क्षीरं स्नेहसमं द्रवान्तरमेकं त्रिगुणं द्वयमपि त्रिगुणं त्रयमिति प्रत्येकं समामिति ? तत्राह ॥ १५ ॥

उक्तवाक्य से ज्ञात हुआ कि क्षीर के साथ अन्य द्रव का उल्लेख होने पर क्षीर स्नेह के समान लिया जाता है । परन्तु जब द्रव एक, दो या तीन होते हैं तब क्या क्षीर को छोड़ कर एक का, दो का या तीनों का चौगुना एवं चार का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बराबर लेकर चौगुना करना चाहिए अथवा क्षीर के साथ ? 'क्षीर के साथ अन्य द्रव का प्रयोग होने पर क्षीर स्नेह के समान लिया जाता है' इस विशेषोक्ति के कारण क्या क्षीर को स्नेह के बराबर और अन्य द्रव यदि एक हो तो तिगुना, दो हो तो मिला कर तिगुने और तीन हों तो समान मिल कर तिगुने इस तरह (क्षीर + ३ द्रव) चतुर्गुण करना चाहिए ? इसका समाधान यह है कि—॥ १५ ॥

क्षीरेण सहैव द्रवान्तरं चतुर्गुणं कर्त्तव्यं तत्र क्षीरं स्नेहसमं द्रवान्तरमेकं त्रिगुणं, द्वयमपि त्रिगुणं, त्रयमपि त्रिगुणमिति सक्षीराणां चतुर्णां समत्वमिति ॥ १६ ॥

क्षीर के साथ में ही अन्य द्रव का चौगुना किया जाता है। यहां पर क्षीर स्नेहके समान तथा अन्य द्रव यदि एक हो तो त्रिगुण, दो हों तो मिलाकर त्रिगुण और तीन हों तो बराबर मिलकर त्रिगुण—इस प्रकार क्षीर + द्रव चतुर्गुण हो जाते हैं ॥१६॥

तदुक्तम्—

पञ्चप्रभृति यत्र स्याद् द्रवन्तु स्नेहसंविधौ ।
तत्र स्नेहसमं प्राहुरर्ध्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥
स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥१७॥ इति ॥

स्नेह पाक की विधि में जब द्रव पदार्थ ४ से अधिक हों तब वे प्रत्येक स्नेह के बराबर २ ही लिये जाते हैं और ४ या ४ से कम होनेपर चौगुने (मिलाकर) गृहीत होते हैं। परन्तु क्षीर स्नेह के समान ही लिया जाता है। कल्क का स्नेह से चौथाई ¼ ग्रहण होता है ॥ १७ ॥

अत्र स्नेहसमं क्षीरमित्युक्तेरर्ध्वाक् स्नेहाच्चतुर्गुणवचनेन क्षीरेण सहैवार्ध्वाचां द्रवाणां चातुर्गुण्यम् । 'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रव' इति सुश्रुतवचनात् 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणमि'ति दृढबलवचनाच्चेति ॥ १८ ॥

यहां पर स्नेह के बराबर क्षीर का और ५ से कम द्रवों का स्नेह से चौगुने का उल्लेख कर यह बतलाया गया है कि इन पदार्थों का चौगुना क्षीर के साथ मिलाकर ही किया जाता है। इसी लिये 'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः' ऐसा सुश्रुत ने और 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्' ऐसा चरक ने लिखा है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि यहां पर 'तोय' शब्द द्रवमात्र का वाचक है न कि केवल जल का ॥ १८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैवं विज्ञायते। अर्व्वाक् पञ्चप्रभृति द्रवात् चेत् स्यात्तदा 'स्नेहाच्चतुर्गुणमि'त्युक्त्या ह्येकेन द्रवान्तरेण क्षीरोक्तौ क्षीरं स्नेहसमं त्रिगुणमपरं द्रवं, द्वाभ्यां सह क्षीरोक्तौ क्षीरं स्नेहसमं द्वयोर्द्रवान्तरयोः प्रत्येकं स्नेहात् सार्द्धगुणत्वमिति मिलितयोस्त्रैगुण्यम्। त्रिभिः सह क्षीरोक्तौ चतुर्णां क्षीरसहितानां प्रत्येकं समत्वमिति चातुर्गुण्यं यथा भवति तथा किं चतुर्भिः सह क्षीरोक्तौ पञ्चप्रभृत्युक्तिर्भवति तत्र प्रत्येकं सममिति क्षीरं स्नेहसममिति न व्याहन्यते? इति चेत्तदा चतुःप्रभृति यत्रोक्तमित्येव पाठात् सिध्यति, व्यर्थः पञ्चप्रभृतीतिपाठः। द्रवान्तरैर्हि त्रिभिः सह क्षीरोक्तौ चत्वारि द्रवाणि भवन्ति, तत्र स्नेहसममिति सिद्ध्यति, क्षीरञ्च स्नेहसममित्युपपद्यते। एवन्तूपपत्तौ सत्यां यत् पञ्चप्रभृतीति पठितं तेनैवं विज्ञापितं यत्र क्षीरेण सहैकं द्वयं त्रयं चतुष्टयं वा द्रवमुक्तं तत्र क्षीरातिरिक्तद्रवान्तराणामेकेनापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि चातुर्गुण्यं त्रिभिश्च चातुर्गुण्यं चतुर्भिस्तु सममिति प्रत्येकं मिलित्वा चातुर्गुण्यमिति पञ्चप्रभृतिद्रवात् क्षीरातिरिक्तादवगेकं द्रवान्तरमपि चतुर्गुणं द्वयमपि मिलित्वा चतुर्गुणं त्रयमपि मिलित्वा चतुर्गुणं चतुष्टयमपि मिलित्वा चतुर्गुणमिति प्रत्येकं समम्। क्षीरञ्च सर्व्वत्र स्नेहसममिति पञ्चगुणे पाकः॥ १६॥

'५ से कम द्रव स्नेह से चतुर्गुण लिये जाते हैं' इसके अनुसार क्षीर के साथ एक द्रव होने पर, क्षीर स्नेह के समान और दूसरा द्रव तिगुना, दो के साथ क्षीर समान और दोनों द्रव प्रत्येक १½ ड्योढ़े (इस प्रकार तिगुने) और तीन द्रवों के साथ में क्षीर होने पर प्रत्येक समान लेने से चतुर्गुण हो जाता है। ठीक इसी तरह जब कि ४ द्रवों के साथ क्षीर का उल्लेख होता है तब 'पञ्चप्रभृति' वाक्य के अनुसार प्रत्येक समान लिया जाता है; क्या ऐसी स्थिति में इस वाक्य (स्नेहसमं क्षीरम्) का खण्डन नहीं हो जाता? जब कि काम 'तत्र स्नेहसमम्' (प्रत्येक समान लेना) केवल इसी से चल सकता है। परन्तु—इसका भाव यह नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर 'चतुःप्रभृति यत्रोक्तम्' इसी वाक्य से काम चल जाने के कारण 'पञ्चप्रभृति' यह बेकार हो जाता है। क्षीर के साथ ३ द्रव-द्रव्य और होने से ४ होते हैं। यहां पर तीनों अलग २ स्नेह के समान और क्षीर भी समान इस प्रकार चातुर्गुण्य सम्पन्न होता है। वास्तव में,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार उपपन्न होने पर भी 'पञ्चप्रभृति' यह पाठ जो पढ़ा गया है उससे यह मालूम होता है कि जब क्षीर के साथ दो, तीन या चार अन्य द्रव कहे गये हों तब क्षीर के अतिरिक्त एक द्रव के साथ भी चतुर्गुण, दो के साथ भी चतुर्गुण, तीन के साथ भी चतुर्गुण और चार के साथ में बराबर २ लेना चाहिए और ५ से कम द्रव होने पर एक भी चौगुना, दो भी मिलकर चौगुने, ३ भी मिलकर चौगुने और ४ होने पर समान लेने से चौगुने हो जाते हैं। इस प्रकार सभी सम हो जाते हैं। परन्तु क्षीर सर्वत्र स्नेह के बराबर ही लिया जाता है। इस तरह पञ्चगुण द्रव में पाक किया जाता है ॥ १६ ॥

उक्तञ्च—

ठीक कहा है—

एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु कुर्य्यात् स्नेहचतुर्गुणम्।
क्षीरं स्नेहसमं तत्र मानानुक्तावयं विधिः ॥ २० ॥

जहां पर स्नेहपाक की विधि में मान का उल्लेख न हो वहां एक, दो, तीन या चार भी द्रव यदि लिखे गये हों तो उनको स्नेह से चतुर्गुण ही करना चाहिए। परन्तु क्षीर स्नेह के समान ही लेना चाहिए ॥ २० ॥

प्रकाशन—क्षीर विवेकः—उक्त प्रकरण में स्नेहपाक के सहयोगी द्रवों की अनुक्तावस्था में मात्रा का निर्णय किया गया है। परन्तु क्षीर जैसे द्रव-पदार्थ को अन्य द्रवों से पृथक् कर कुछ निराली विशेषता प्रदान की है। वस्तुतः यह हमारे शास्त्र के विज्ञान की महत्ता एवं प्राचीन महर्षियों के प्रत्येक पदार्थ में रहने वाले विभिन्न द्रव्यों के सूक्ष्म से सूक्ष्म दर्शनातीत अणु-परमाणुओं के गवेषणापूर्ण अनुसन्धान की परिचायिका हैं। क्षीर (गोक्षीर) के अन्दर ३·६६ प्रतिशत स्नेह, ०·७१ प्र० क्षार, ८७·१७ प्र० जल, ४·८८ कार्बोहाइड्रेट, (कार्बन) ०·५३ प्रतिशत आमरस या अल्ब्यूमिन तथा कुछ अन्यान्य लवण भी संयुक्त रहते हैं—ऐसी परिस्थिति में जब कि साधारण द्रवों की अपेक्षा अनेकों विशेषतायें हैं अवश्य ही वैशेष्य होना चाहिए। खासकर स्नेहपाक-विधान में जहां अन्य द्रवों का भी उल्लेख आता है—क्षीर का स्नेह के बराबर मान में ग्रहण करने का तात्पर्य यह है—कि क्षीर के अन्तरीय जल से द्रवमान की पूर्ति तो हो ही जाती है अतिरिक्त इसके स्नेह का अल्ब्यूमिन आदि पदार्थों से विशेष गुणाधान होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। सारांश यह है कि जहां पर द्रवार्थ क्षीर का विधान होता है वहां पर सम्पूर्ण क्षीर द्रवार्थ प्रयुक्त न होकर केवल अन्तरीय जल से द्रवविधान की सिद्धि तथा अन्य द्रव्य गुणाधान के लिये होते हैं। सरल बोध के लिये अलग-अलग न बताकर संयुक्त निर्देश किया गया है।

'तत्र स्यादौषधात् स्नेहश्चतुर्गुण' इति चरके 'स्नेहचतुर्थांशो भेषज कल्क' इति सुश्रुते चोक्तम् ॥ २१ ॥

'ओषधि से स्नेह चतुर्गुण' ऐसा चरक ने और 'स्नेह से चौथाई ओषधि कल्क' ऐसा सुश्रुत ने माना है ॥ २१ ॥

तस्माद्यदिदमुक्तम्—

स्नेहे सिध्यति शुद्धाम्बुनिक्काथस्वरसैः क्रमात् ।
कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ २२ ॥ इति ॥
तदनार्षं चरक-सुश्रुत-विरुद्धत्वात् ॥ २३ ॥

इसलिये यह कहना कि—'शुद्धजल, क्वाथ या स्वरस द्वारा स्नेहपाक का विधान बतलाने पर ओषधि कल्क क्रमशः चतुर्थांश, षष्ठांश ($\frac{1}{6}$), अष्टमांश ($\frac{1}{8}$) प्रयुक्त करे' चरक—सुश्रुत विरुद्ध होने से ऋषि-वाक्य (प्रमाणित) नहीं कहा जा सकता ॥ २२-२३ ॥

प्रकाशन—स्नेह से चौथाई भेषज कल्क लेने का ही सिद्धान्त ठीक है। यद्यपि क्काथ और स्वरस में जल की अपेक्षा पर्याप्त विशेषतायें होती हैं तथापि स्नेह पदार्थ का एकदम अभाव होता है। इसलिये पहले (क्काथ में) क्काथ्यकल्क में स्नेहाग्नि-संयोग हुआ नहीं रहता और बाद में भेषजकल्क षष्ठांश लेने पर अधिक से अधिक ओषधियों का स्नेह के साथ पाक नहीं हो पाता। अस्तु चरक, सुश्रुत का ही मत मान्य और अधिक वैज्ञानिक है। स्वरस के लिये भी यही बात है।

यच्चोच्यते—

दधिक्षीररसानाञ्च मात्रा स्नेहसमा मता ।
द्रवान्तराप्रयोगे स्यादन्यत्र तु चतुर्गुणा ॥ २४ ॥

इति तदनार्षम्—

'अन्य द्रवों का उल्लेख होने पर दही, दूध और रस की मात्रा स्नेह के बराबर ही मानी गयी है और 'द्रवान्तराभाव में चौगुनी'—यह वाक्य भी आर्ष नहीं है ॥ २४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशन—कविराज जी के मत से उक्त वाक्य आर्ष कहने के योग्य नहीं परन्तु मैं इस सम्पूर्ण वाक्य को असंगत मानने के लिये तैयार नहीं हूं क्यों कि क्षीरमान का विवरण जैसा यहां पर है ठीक वैसा ही पीछे प्रतिपादित हुआ है। पाठकगण विचार कर सकते हैं। रही दही के विषय में, सो दही में भी प्रायः वेही पदार्थ और उसी मात्रा में होते हैं जो कि दूध में। केवल तक्राम्ल (लैक्टिक एसिड) की उत्पत्ति तथा दुग्धशर्करा की कुछ कमी हो जाती है। इस लिये दूध और दही के लिये एक नियम मान लेना आपत्तिजनक नहीं हो सकता। हां रस के विषय में अवश्य ही झंझट है क्यों कि उसमें स्नेह आदि द्रव्यों की कोई सम्भावना नहीं मालूम पड़ती। सम्भव है ग्रन्थकार ने इसी के लिये 'अनार्ष' शब्द का प्रयोग किया हो। अथवा 'क्षीररस' का अर्थ क्षीर से निकाले निर्मित पदार्थों का माना जा सकता है।

स्वरस-क्वार-मस्त्वाद्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्।
जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्य्याधानार्थमावपेत् ॥ २५ ॥
इत्यप्यनार्षं चरकसुश्रुतादि-विरोधात् ॥

'जहां पर स्वरस, क्षीर या मस्तु आदि से पाक का विधान हो वहाँ वीर्याधान के लिये चौगुना जल भी संयुक्त करें' यह वाक्य भी चरक-सुश्रुत के विरुद्ध होने से संगत नहीं है ॥ २५ ॥

प्रकाशन—उक्त नियम सार्वत्रिक नहीं हो सकता, भले ही कहीं २ पर वीर्याधान की विशेषता क्यों न प्रकट करता हो। क्यों कि अनेकों तत्वपदार्थ अधिक तापक्रम पर निर्गुण हो जाते हैं।

अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते।
नस्यादौ स्नेहकुडव इष्यते स्नेहवेदिना ॥ २६ ॥
एषामुदाहरणानि शिरोरोगे।

जब स्नेह द्रव्यों का प्रमाण दिया न गया हो तब १ प्रस्थ ग्रहण करना चाहिए और नस्य आदि के लिये १ कुडव स्नेह लेना चाहिए ऐसा स्नेहमर्मज्ञों का मत है। इस प्रकार के उदाहरण शिरोरोगाधिकार में मिलेंगे ॥ २६ ॥

रक्तपित्ते चरकेणोक्तम्—
'लिह्याद् घृतं वत्सककल्कसिद्धम्' इति ॥ २७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्तपित्ताधिकार में चरक ने लिखा है कि—वत्सक-कल्क (कौरैया) द्वारा सिद्ध घृत का सेवन करे ॥ २७ ॥

अत्र जलं चतुर्गुणं कल्कः पादिकः । द्रवानुक्तत्वाज्जलं, कल्कभागानुक्तत्वात् पादिकः । गणत्वाभावान्न क्काथः ॥ २८ ॥

यहां पर जल चौगुना और कल्क चौथाई लेना चाहिए । क्यों कि द्रव का उल्लेख न होने से जल और कल्क की मात्रा न होने से चौथाई होगी तथा गण के अभाव से क्काथ नहीं होगा ॥ २८ ॥

गुल्मे च—

त्र्यूषणं त्रिफला धान्यं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
एषां कल्के घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ २९ ॥
इह क्षीरमेकं द्रवं चतुर्गुणं, कल्कः पादिकः ॥ ३० ॥

त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला, धनिया, वायविडङ्ग, चव्य, चीता इनका कल्क और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ घृत वातगुल्म को नष्ट करता है । यहां पर क्षीर एक ही द्रव है इस लिये चौगुना और कल्क चौथाई लिया जायगा ॥ २९-३० ॥

एत एव च कल्काः स्युः कषायः पाञ्चमूलिकः ।
द्विपञ्चमूलिको वापि तद्घृतं गुल्मनुत् परम् ॥ ३१ ॥ इति ॥

उपरिनिर्दिष्ट द्रव्यों का कल्क तथा पञ्चमूल-क्वाथ या दशमूल-क्काथ द्वारा सिद्ध घृत गुल्मनाशक होता है ॥ ३१ ॥

इह चैकः पञ्चमूलिकः कषायश्चतुर्गुणः । द्विपञ्चमूलिको वा कषायश्चतुर्गुण एव योगान्तरोऽयम् ॥ ३२ ॥

यहां पर पञ्चमूल-क्काथ या दशमूल एक ही द्रव है क्यों कि ये दो योग हैं—इसलिये चतुर्गुण लेना शास्त्रसम्मत है ॥ ३२ ॥

रसेनामलकेक्षूणां घृतं प्रस्थं विपाचयेत् ।
पथ्यापादं पिबेत् सर्पिस्तत् सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥ ३३ ॥

आमला और ईख के रस से १ प्रस्थ घी में हरड़ का चौथाई भाग (कल्क) पकावे । यह घी पित्तगुल्म को नाश करता है ॥ ३३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इहामलकरसो द्विगुणः, इक्षुरसो द्विगुणः, इति द्वाभ्यां चतुर्गुणो द्रवः ॥ ३४ ॥

यहां पर आमला का रस दूना और ईख का रस दूना-इस तरह दोनों मिल कर चौगुना द्रव होता है ॥ ३४ ॥

एलादितैले—

एलामुरासरलशैलजदारुकौन्तीत्यारभ्य, स्पृक्कातुरुष्कलघुलाभतयावि-नीय, तैलं बलाकथनदुग्धयुतञ्च दध्ना सार्द्धं पचेत्तु हितमेतदुदाह-रन्ति ॥ ३५ ॥

इलायची, मुरा (एकाङ्गी), सरल, छड़ीला, देवदारु, मेउढ़ी, यहां से लेकर स्पृक्का (असवरग), तुरुष्क पर्यन्त द्रव्यों का कल्क, बलाक्वाथ, दूध और दही के साथ तैल में पकावे। यह एलादितैल वातरोग में हितकर है ॥ ३५ ॥

इह बलाक्वाथदुग्धदधिभिस्त्रिभिर्द्रवैश्चातुर्गुण्यम्। तत्र 'क्षीरं स्नेहसमं मतमि'ति विशेषोक्त्या स्नेहसमं दुग्धं बलाक्वाथदधिभ्यां त्रिगुणं तत्र भागानुक्तौ सममिति ॥ ३६ ॥

यहां पर बलाक्वाथ, दूध और दधि तीनों मिल कर चतुर्गुण होना चाहिए। इसलिये। 'क्षीरं स्नेहसमम्' इस विशेष वाक्य के अनुसार क्षीर स्नेह के बराबर तथा बलाक्वाथ और दधि दोनों मिला कर तिगुने अर्थात् 'भागेऽनुक्ते तु साम्यम्' वाक्य से बराबर २ लेने से प्रत्येक डयोढ़ा, इस प्रकार तीनों चौगुने हो जाते हैं ॥

कश्चिदत्राह—

क्षीरं स्नेहसममिति द्रवान्तरात् पृथगुक्त्या द्रवान्तरैश्चातुर्गुण्यं 'क्षीरं स्नेहसमि'ति पञ्चगुणे पाक इति तदसम्यक्। 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणमि'ति-वचनात्तोयपदेन द्रवसामान्यग्रहणात्, तत्र द्वित्र्यादिषु भागानुक्तौ समत्व-प्राप्तौ क्षीरस्य स्नेहसमत्वं विशेषेणोक्तम् ॥ ३७ ॥

किसी का मत है कि—'क्षीरं स्नेहसमम्' इस वाक्य से क्षीर द्रवान्तरों से पृथक् हो जाता है। इस लिये द्रवान्तरों से चतुर्गुण कर क्षीर को स्नेह-सम ले कर पञ्चगुण में पाक करना चाहिए—सो ठीक नहीं है। क्यों कि 'स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्' इस पद में तोय शब्द से द्रवमात्र का ग्रहण होता है और दो, तीन आदि द्रवों के होने पर 'भागेऽनुक्ते तु साम्यम्' के बल से सब द्रवों को समान २

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकर चतुर्गुण करना चाहिये । परन्तु 'क्षीरं स्नेहसमम्' इस विशेषोक्ति से क्षीर स्नेह के बराबर ही रहता है । इस प्रकार शेष द्रवों का चातुर्गुण्य किया जाता है ॥

चरके गुल्मे द्राक्षाद्यघृते—

द्राक्षां मधूकं खर्जूरं विदारीं सशतावरीम् ।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत् पलसम्मिताम् ॥ ३८ ॥
जलाढके पादशेषं रसमामलकस्य च ।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ ३९ ॥

चरक ने गुल्माधिकार में द्राक्षादिघृत में कहा है—द्राक्षा, मधूक, खजूर, विदारीकन्द, शतावरी, फालसा, त्रिफला, (१ पल) घृत से चौथाई हरड़ का कल्क इनका १ आढक जल में चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ और आमला का रस, ईख का रस, क्षीर—ये सब द्रव्य घृत में सिद्ध करे ॥ ३८-३९ ॥

साधयेत्तद्घृतमित्यत्र चतुर्भिः समभेव चतुर्गुणं तेन सिद्ध्यति । एवं पञ्चप्रभृतिषु द्रवेषु द्रष्टव्यम् ॥ ४० ॥

यहां पर ४ द्रव पदार्थ हैं—इस लिये बराबर बराबर लेने से चातुर्गुण्य हो जाता है । इस तरह पांच आदि द्रवों में भी समझना चाहिए ॥ ४० ॥

अथ कल्कादि माननिर्णयः ।

वृषादिकुसुमैः कल्कैर्यत्रोक्तं स्नेहसाधनम् ।
कल्काढ्यत्त्वात्तु पादार्द्धं तत्र कल्कं प्रदापयेत् ॥ १ ॥

अडूसे आदि के फूलों से जहां पर स्नेह-साधन का विधान हो वहां पर कल्क, स्नेह से अष्टमांश दिया जाता है ॥ १ ॥

प्रकाशन—कल्काढ्यत्वात् तुः—'पुष्पों का कल्क अन्य कल्कों से विशेषता रखता है—इसी बात को बतलाने के लिये 'कल्कस्य-आढ्यत्वं तस्मात् कारणात्' इस प्रकार का रहस्यपूर्ण वाक्य रखा गया है । वनस्पतिशास्त्र (Botany) का विद्यार्थी यह जान सकता है कि पुष्प के अन्दर बीजकोष, शुक्राणु और मधु, आदि ऐसे विशिष्ट पदार्थ रहते हैं जिसके कारण उसमें अधिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्ति जागृत रहती है। इसीलिये पुष्पकल्क, चतुर्थांश या अर्द्धांश न लेकर अष्टमांश ही लेते हैं।

शणस्य कोविदारस्य ककुभस्य च शाल्मलेः।
कल्काढ्यत्वात् पुष्पकल्कं स्नेहप्रस्थे चतुष्पलम्॥ २॥

सन, कांचनार, अर्जुन और सेमर के फूलों का कल्क जब स्नेहपाक में देना हो तो उसे चौथाई लेना चाहिए अर्थात् १ प्रस्थ स्नेह में ४ पल कल्क। यह चतुर्थांश हुआ॥ २॥

प्रकाशन—कल्काढ्यत्वात्—उक्त श्लोक की तरह इस में 'कल्काढ्यत्वात' के आगे 'तु' न होने से शब्द पर उतना जोर नहीं रहता। इसलिये इसमें चतुर्थांश ही कह दिया। वस्तुतः सन, कांचनार आदि के पुष्पों में उतनी शक्ति-प्रदायिका विशेषतायें भी नहीं होतीं जितनी कि वृक्ष आदि में, अतः इन पुष्पों को चतुर्थांश लेने में भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

यथा—'वासां सशाखां सफलां समूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः।
प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं तत्
सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम्'॥ ३॥

जैसे—शाखा, फल, और जड़ के साथ अडूसे का क्वाथ कर के तथा इसके फूलों का कल्क बना कर घृत में पाक करे। इस घृत को मधु के साथ सेवन करने से रक्तपित्त शीघ्र ही नष्ट होता है॥ ३॥

प्रकाशन—इस योग में यदि केवल पुष्पकल्क ही कहा गया होता तब तो अवश्य अष्टमांश ग्रहण करना पड़ता। परन्तु ऐसा न होकर शाखा, मूल आदि सभी अङ्गों का ग्रहण किया गया है। अतः साधारण नियम के अनुसार चतुर्थांश ही लेना चाहिए।

अत्र केचिदाहुः।
'केवलेनाष्टवर्गेण पाको यत्रेरितः क्वचित्।
पलं चतुष्टयं तत्र कल्कमाहुर्मनीषिणः॥ ४॥ इति॥
तदनार्षत्वाद्धेयम्।

कुछ लोगों का मत है—केवल अष्टवर्ग के साथ जहाँ स्नेह-पाक का विधान हो वहाँ पर १ प्रस्थ स्नेह में ४ पल कल्क अर्थात् चतुर्थांश का ही ग्रहण करते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परन्तु यह अनावश्यक होने के कारण ऋषिसम्मत नहीं है। क्यों कि यह कार्य 'स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः' इसी वाक्य से सिद्ध हो जाता है ॥ ४ ॥

अकल्कोऽपि भवेत् स्नेहः साध्यः स्यात् केवले द्रवे।
समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु।
तिलतैलं समं सिद्धं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ५ ॥

कल्क के विना भी स्नेह सिद्ध किया जाता है। यह केवल द्रव द्वारा ही सम्पन्न होता है। जैसे—जड़ और पत्तों समेत निर्गुण्डी को निचोड़ कर उसके स्वरस के बराबर तैल में पकावे। यह तैल नाडीदोष तथा व्रणों में लाभ करता है।

अथ स्नेहसाधने क्वाथकल्पना सुश्रुतेनोक्ता ॥ ६ ॥

स्नेहसाधन में सुश्रुतोक्त क्वाथ-कल्पना का प्रकार निम्न रीत्या है ॥ ६ ॥

तत्र यथायोग त्वक्पत्रफलमूलादीनामातपपरिशोषितानां छेद्यानि खण्डशश्छेदयित्वा भेद्यान्यणुशो भेदयित्वाऽवकुट्याष्टगुणेन षोडशगुणेन वाऽम्भसाभिषिच्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्वाथयित्वाऽपहरेदित्येष कषाय-पाककल्पः ॥ ७ ॥

योग में वर्णित छाल, पत्ते, फल, जड़ आदि को धूप में सुखा लें। शुष्क द्रव्य आदि काटने योग्य हों तो काट कर छोटे २ टुकड़े कर लें और यदि चीरने योग्य हों तो चीर कर भली भांति कूट डालें इन द्रव्यों में अठगुना अथवा सोलह गुना पानी डाल कर भिगोये और उपर्युक्त पात्र में धीरे २ पकावे। जल चौथाई रहने पर उतार कर छान ले। यही कषाय-कल्पना की विधि है ॥ ७ ॥

इत्यष्टगुणतोयं मृद्वादिद्रव्यसङ्घाताभिप्रायेण द्रवद्वैगुण्येनैवोक्तमत एवान्यत्र चोक्तम् ॥ ८ ॥

उपरोक्त अष्टगुण जल, मृदु आदि (मध्य, कठिन) पदार्थों के संगठन अर्थात् अणुसंघात की घनता का अभिप्राय लेकर ही 'द्रवद्वैगुण्य' परिभाषा का परिवर्तित स्वरूप है। अधोनिर्दिष्ट वाक्यों में उसी की छाया है ॥ ८ ॥

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्।
स्नेहात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥
चतुर्गुणन्त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् ॥ ९ ॥ इति।

जिन द्रव्यों का क्वाथ करना है उनसे चौगुना जल लेकर चौथाई शेष काढ़ा बना कर काढ़े से चौथाई स्नेह, (स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्) स्नेह के बराबर क्षीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और चौथाई कल्क देकर पाक किया जाता है। यही चतुर्गुण 'द्रवद्वैगुण्य' वाक्य के अनुसार दूना कर देने से अष्टगुण हो जाता है जैसा कि ऊपर उल्लेख है ॥ ९ ॥

यत्र क्वाथ्यद्रव्यमानमल्पमष्टगुणे तोये क्वाथकरणे स्नेहचतुर्गुणः क्वाथो न भवति तत्रोक्तमानेन क्वाथ्यद्रव्यं गृहीत्वा षोडशगुणे तोये क्वाथयित्वा पादशषं स्नेहचतुर्गुणं कुर्य्यादित्यभिप्रायेणोक्तं षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्येति ॥ १० ॥

जहां पर क्वाथ्य द्रव्य थोड़ी मात्रा में होते है वहां पर अष्टगुण जल में क्वाथ करने से अवशिष्ट क्वाथ, स्नेह से चौगुना नहीं हो पाता। इस लिये ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण द्रव्य पूर्ववत् उसी मात्रा में लेकर षोडशगुण जल में क्वाथ करने से चतुर्थांशावशिष्ट, स्नेह से चौगुना हो जाता है। इसी अभिप्राय से 'सोलह गुने जल में भिगोने के लिये' सुश्रुत ने कहा है ॥ १० ॥

अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्पत्रमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निक्वाथ्यापहरेदित्येष कषायकल्प इति ॥ ११ ॥

अथवा १ द्रोण जल में छाल, फल, मूल आदि एक तुला की मात्रा में डाल कर चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ बनाने की भी एक विधि है ॥ ११ ॥

स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कस्तदैकध्यं संसृज्य विपचेदिति। एतदनुसृत्य कश्चित् प्रतिसंचस्कार ॥ १२ ॥

स्नेह से चौगुना द्रव और चौथाई भेषजकल्क एक में मिला कर पाक करना चाहिए। इसी वाक्य को लेकर किसी प्रतिसंस्कर्ता ने लिखा है ॥ १२ ॥

'मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं तथा।
कठिनात् कठिनं यच्च तत्र षोडशिकं जलम्' ॥ १३ ॥

'मृदु द्रव्य के लिये चौगुना, कठिन के लिये अठगुना और अत्यन्त कठिन के लिये सोलह गुना पानी देना चाहिए ॥ १३ ॥

मृद्वादौ द्रव्यसंघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः।
मध्यस्थोभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम् ॥ १४ ॥ इति।

मृदु आदि द्रव्यसंघात में मान का वर्णन न होने पर चिकित्सक को चाहिए कि वह मध्यम को दोनों (मृदु, अतिकठिन) के बीच का समझ कर अष्टगुण जल में पाक करे ॥ १४ ॥

सुश्रुतोक्ताष्टगुणतोये पादावशेषमनुसृत्योक्तमपरेण ॥ १५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुश्रुत में वर्णित अष्टगुण जल के चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ का ही किसी दूसरे विद्वान् ने भी अनुकरण किया है ॥ १५ ॥

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि द्वैगुण्येऽष्टगुणन्तु तत्।
पादावशिष्टं गृह्णीयात् क्वाथं स्नेहाच्चतुर्गुणम् ॥ १६ ॥

क्वाथ के द्रव्यों से चौगुना जल, 'द्रवद्वैगुण्य' के अनुसार अठगुना देकर चौथाई शेष ग्रहण करना चाहिए। यह क्वाथ स्नेह से चौगुना होना चाहिए ॥१६॥

यथा—

वासां सशाखां सफलां समूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्या इति दर्शितम् ॥ १७ ॥

इसका अर्थ पहले ही (पृष्ठ ३३) में लिखा जा चुका है ॥ १७ ॥

अथ सुश्रुतोक्तं—तत्रोदकद्रोणे त्वक्पत्रमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निक्वाथ्यापहरेदिति वचनमनुसृत्योवाच ॥ १८ ॥

सुश्रुतोक्त 'तत्रोदक द्रोणे' (अर्थ पहले ११ वें गद्य पर लिखा जा चुका है) वाक्य का अनुसरण करते हुये किसी ने कहा है ॥ १८ ॥

'तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुलाम्भसि।
ततः पलशते द्रव्ये जलद्रोणोऽपि चेष्यते ॥ १९ ॥

जहाँ पर द्रव्य एक तुला हो और जल का मान न दिया गया हो वहाँ पर जल एक द्रोण लेना चाहिए। इसी प्रकार जब एक द्रोण का उल्लेख हो और द्रव्य मान न दिया गया हो तब द्रव्य एक तुला लेने चाहिए। सौ पल (१ तुला) द्रव्य में १ द्रोण जल माना गया है ॥ १९ ॥

प्रकाशन—पूर्वपाद तथा श्लोक के उत्तरार्द्ध का एक ही अभिप्राय है इस लिये ऐसी पुनरुक्ति पिष्ट-पेषण के सिवा और कुछ नहीं है। हो सकता है योग्य ग्रन्थकर्ता ने भिन्न २ प्रयोगों में आने वाले 'तुला' तथा 'पलशत' इन दो शब्दों से यकायक पैदा होने वाले भ्रम को सरल छात्रों के कोमल हृदयों में उत्पन्न न होने देने के लिये ही ऐसा संग्रह किया हो। वस्तुतः ये भिन्न २ श्लोकों के दो पद हैं।

यथा, नागबलातैले—

'शुद्धां पचेन्नागबलातुलान्तु विस्राव्य तैलाढकमत्र दद्याद्' इत्यादौ तुलाद्रव्ये जलद्रोण इति ॥ २० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदाहरणार्थ—नागबला तैल में, एक आढक तैल, एक तुला नागबला के क्वाथ द्वारा सिद्ध होता है। यहाँ पर क्वाथ के जल की मात्रा नहीं दी है। इसलिये पूर्वोक्त परिभाषा के अनुसार १ द्रोण जल लिया जायगा ॥ २० ॥

छागलाद्यघृते च—

अजं चर्म्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गखुरादिकम् ।
पञ्चमूलीद्वयञ्चापि जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१ ॥

इत्यादौ द्रोणे द्रव्यतुलाम्भसीति ।

छागलाद्यघृत—इसमें चर्म, शृङ्ग, खुर आदि से रहित बकरे का मांस, और दशमूल एकद्रोण जल में पकाकर चौथाई शेष कर के एक प्रस्थ घी में पकाना चाहिए। यहाँ पर जल की मात्रा दी गयी है परन्तु द्रव्यमात्रा का उल्लेख नहीं है। अतः 'द्रोणे द्रव्यतुलाऽम्भसि' के अनुसार १ तुला द्रव्य लेना होगा ॥ २१ ॥

अस्थूलकृशवयःस्थच्छागगुडक-दशमूलानां मिलितानां तुला ज्ञेया । तुला पलशतमित्यतः ॥ २२ ॥

यहां पर बकरे का मांस, दशमूल आदि सब मिलाकर एक तुला (सौपल) माना गया है। बकरे की आयु नवीन हो, वह कृश अथवा अत्यन्त स्थूल न हो ॥ २२ ॥

पलशतनिर्देशेऽपि जलद्राणो ज्ञेयः । यथा कुलत्थगुडे ॥ २३ ॥

पलशत का निर्देश होने पर भी जल १ द्रोण लिया जाता है। जैसा कि कुलत्थगुड में देखा जाता है ॥ २३ ॥

कुलत्थो दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका ।
शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २४ ॥

कुलत्थगुड—कुलथी, दशमूल, भारंगी प्रत्येक सौ सौ पल, एक २ द्रोण जल में पकावै ॥ २४ ॥

इत्यत्र कुलत्थादीनां त्रयाणां प्रत्येकं शत-शतपलं प्रतिशतपलं जल-द्रोणे पचेन्न तु त्रिशतपलमेकद्रोणेजले । इत्यनुक्ते प्रदर्शितम् ॥ २५ ॥

यहां पर कुलथी आदि प्रत्येक सौ सौ पल हैं। इसीलिये प्रति सौ पल एक द्रोण जल के हिसाब से लेना चाहिए नकि सभी द्रव्य (३०० पल) एक द्रोण जल में पकाये जायं। यह अनुक्त प्रकरण में दिखाया गया है ॥ २५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशन—चतुर्गुण, अष्ट गुण और षोडश गुण—ये तीन प्रकार के गुणत्व कषायकल्पना के लिये प्रायः व्यवहृत होते हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें से कौन सर्वसम्मत तथा उपयुक्त है? वास्तव में यह गुणीकरण का सिद्धान्त पदार्थ की अपनी अवयव संहति एवं अणु—परमाणुओं की संसक्ति पर निर्भर करता है। एक भौतिक—विज्ञान (Physix) का विद्यार्थी इसे भली भांति समझ सकता है। सम्भवतः इसी आधार पर 'द्रवद्रैगुण्य' की रचना तथा 'मध्यस्योभयभागित्वात्' की स्थापना की गयी। योग्य आयुर्वेदज्ञ, पदार्थ का संगठन देख कर स्वयं निश्चय कर सकते हैं।

इति प्रकाशितं प्रकाशिकया अनुक्तप्रकरणम्।

अथाव्यक्तविवेचनम्।

अव्यक्तनिर्देशे यथा सुश्रुते—

अव्यक्त का निर्देश करते हुये सुश्रुत ने बतलाया है।

कल्ककाथावनिर्देशे गणात्तस्मात् प्रयोजयेत्॥ इति॥

यत्र योगे द्रव्यगण एव निर्दिष्टः क्काथो वा कल्को वा न निर्दिष्टस्तस्मिन्ननिर्देशे तस्माद्द्रव्याणां गणात् कल्ककाथावुभौ प्रयोजयेदिति। एतदेवानुसृत्य कश्चित् पद्येनोवाच॥ १॥

उक्त सुश्रुत—वाक्य के अनुसार जब किसी योग के अन्दर गण का उल्लेख देकर यह नहीं बतलाया जाता कि कल्क या क्काथ क्या देना चाहिए? तब कल्क तथा क्काथ दोनों उसी गण के द्रव्यों से बना लेना चाहिए। इसी का अनुसरण करके किसी ने छन्दोमयी भाषा में कहा है॥ १॥

यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधौ।
तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना॥ २॥ इति॥

जहाँ स्नेहपाक की विधि में गण का अधिकरणरूप से वर्णन किया गया हो वहीं पर कल्क और क्काथ दोनों का उसी गण से ग्रहण होता है॥ २॥

यथा चरके ज्वराधिकारे पिप्पलाद्यघृते—

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी।
कलिङ्गकास्तामलकीसारिवातिविषास्थिरा॥ ३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणानिदिग्धिका ।
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णं व्यपोहतीति ॥ ४ ॥

चरक ने ज्वराधिकार में पिप्पल्याद्यघृत का वर्णन करते हुये लिखा है:—पिप्पली, चन्दन, नागरमोथा, खस, कटुकी इन्द्रजौ भूआमला, सारिवा (अनन्तमूल) अतीस, शालिपर्णी, मुनक्का, आमला बिल्व, त्रायमाण, कण्टकारी (कटेरी) इनके द्वारा सिद्ध घृत जीर्णज्वर को नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

अत्राधिकरणे पिप्पल्यादिद्रव्यगणैः सिद्धं घृतमित्युक्तं नतु कल्कैर्नापि क्वाथैरिति निर्देशः कृत इत्यनिर्देशे तस्मात् पिप्पल्यादिद्रव्यगणात् कल्ककाथौ प्रयोजयेदिति ॥ ५ ॥

यहाँ पर पिप्पल्यादि द्रव्यों के गण से घृत सिद्ध करने का वर्णन है। परन्तु क्वाथ का उल्लेख नहीं है। इस लिये पिप्पल्यादि द्रव्यों का ही क्वाथ एवं कल्क दोनों बना लेना चाहिए ॥ ५ ॥

अत्र कश्चिदधिकरणशब्देनोपदेशस्थानं न व्याख्याय भ्रान्त्या प्राहाधिकरणेन सप्तम्यन्तनिर्देशेन यत्रोक्तिस्तत्रैव कल्कनिर्यूहाविति । तत् एतद्वाक्यबलेन सप्तम्यन्तनिर्देशादन्यत्र कल्कसाध्यं घृतमिदं कल्कस्य मुख्यत्वादिति ॥ ६ ॥

यहाँ पर (यत्राधिकरणेनोक्तिः) किसी ने 'अधिकरण' शब्द का अर्थ उपदेश-स्थान (निर्देशस्थल) न लेकर भ्रान्ति से सप्तम्यन्त अर्थ समझा है। उसका कहना है जहां पर अधिकरणेन अर्थात् सप्तम्यन्त-निर्देश से कहा गया हो वहीं पर कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिए। इस लिये सप्तम्यन्त निर्देश के अतिरिक्त (जैसे पिप्पल्यादिघृत में) केवल कल्क से सिद्ध करने चाहिए, क्यों कि कल्क मुख्य होता है ॥ ६ ॥

प्रकाशन—चक्रपाणि के संगृहीत पिप्पल्यादिघृत में 'निश्चलकर' ने अपने व्याख्यान में लिखा है:—'नचायं पिप्पल्यादिगणोऽधिकरणेन उक्त इति। अतः पिप्पल्यादेः कल्कसाध्यस्य न क्वाथकल्कं कुर्यादिति'। कविराज जी का 'एतद्वाक्यबलेन' यह वाक्य 'एतद्वाक्यबलादेव कल्कसाध्यं परं घृतम्' इति पद्य का प्रतीक है।

तन्नेति कृत्वापरेणोक्तम्—
करणेनापि निर्देशे कल्ककाथौ तथापि तौ ॥ ७ ॥ इति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त अर्थ का किसी दूसरे विद्वान् ने इस प्रकार खण्डन किया है कि—करण (तृतीयान्त) का निर्देश होने पर भी क्वाथ और कल्क दोनों बनाना चाहिए। जैसे पिप्पल्यादि घृत में ॥ ७ ॥

यत उक्तं सुश्रुते—

कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात् प्रयोजयेत् । इति

तस्मात् सिद्धमेतैर्घृतमिति करणेनाप्युक्तौ निर्देशाभावे कल्कक्वाथावेव ग्राह्यौ न केवलः कल्कः ॥ ८ ॥

चूंकि सुश्रुत ने कहा है:—'कल्क क्वाथ का निर्देश न होने पर भी उल्लिखित गण के कल्क, क्वाथ कर लेना चाहिए' इस लिये 'सिद्धमेतैर्घृतम्' यहां पर करण (तृतीयान्त) द्वारा निर्देश होने पर भी, कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिए नकि केवल कल्क ॥ ८ ॥

तत्रापरः कश्चिदाह—

यत्राधिकरणेनोक्तिरित्यार्षी परिभाषा सुश्रुतोक्ता चार्षी । द्वयोर्विरोधे द्वेएव प्रमाणे भवतः ॥ ९ ॥

इसी विषय में किसी दूसरे ने भी कहा है:—'यत्राधिकरणेनोक्तिः' यह भी आर्ष परिभाषा है और दूसरी 'सुश्रुतोक्त' भी। इस लिये यहां पर दोनों के विरोधी होने से दोनों ही प्रमाण हैं ॥ ९ ॥

उक्तं हि—

यत्र द्वयोर्विरोधः स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृताविति ॥ १० ॥

ठीक कहा है—जहां पर दोनों विरोधी हों वहां पर दोनों वाक्य माननीय समझे जाते हैं ॥ १० ॥

तस्मादिहाधिकरणेनोक्तिरिति विशेषवचनात् करणेनोक्तौ न क्वाथ-कल्कौ ग्राह्यौ मुख्यत्वात्तु कल्क एव ग्राह्य इति ॥ ११ ॥

इस लिये यहां पर 'अधिकरणेनोक्तिः' इस विशेष वाक्य से जहाँ पर करण से उक्ति हो वहां पर कल्क क्वाथ दोनों नहीं लेना चाहिय, क्यों कि मुख्य कल्क ही होता है। इस लिये कल्क ही लेना चाहिए ॥ ११ ॥

तत्राह तं प्रति सः—

सुश्रुत वचनेत्वनिर्देशे इत्युक्त्या येन केनापि प्रकारेण कल्क-क्वाथयोर्निर्दर्देशाभावे इत्यर्थस्तेन सप्तम्यन्त-तृतीयान्तान्यतरानिर्देश इत्यर्थः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्नस्ततस्तृतीयान्तेनापि निर्दूर्देशे कल्ककक्वाथौ लब्धौ भवत इति ॥१२॥

एवं वक्ता के प्रति उत्तर देनेवाला इस प्रकार समाधान करता है। सुश्रुत के वाक्य में केवल 'अनिर्देशे' शब्द के विन्यास से इतना ही ज्ञात होता है कि कल्क क्वाथ का उल्लेख न होने पर दोनों लेने चाहिए, जिसमें कि सप्तम्यन्त या तृतीयान्त किसी का भी निर्देश माना जा सकता है। इसलिये तृतीयान्त निर्देश होने पर भी दोनों ग्रहण करने की बात सिद्ध हो जाती है ॥ १२ ॥

तत्राऽप्याऽऽहाऽपरः सः—

नैवमिह ह्यधिकरणपदेन करणप्रतिषेधः कृतस्तस्मादयं पक्षोऽस्माकम्। करणाधिकरणाभ्यां निर्दूर्देशे कल्ककक्वाथपक्षोऽस्तु भवतामिति ॥ १३ ॥

इस पर किसी अन्य वक्ता ने कहा है—'नहीं, यहाँ पर अधिकरण पद से करण-निर्देश का प्रतिषेध किया गया है, इसलिये यह हमारा पक्ष है। इसके विरुद्ध, करण तथा अधिकरण दोनों ही के निर्देश पर कल्क और क्वाथ दोनों ही लेना चाहिए यह आपका पक्ष है। इस प्रकार दो मत हो जाते हैं ॥ १३ ॥

अत्रापर आह—

नैवं, न ह्यनेनाविवादः स्यात्। ततश्चैवं व्याचक्ष्महे। यत्राधिकरणेनोक्तिरिति यत्राधिकारतया भवत्युक्तिस्तत्रैव कल्कनिर्यूहाविति नान्यत्र। न च पिप्पल्याद्यघृते पिप्पलाद्यगणोऽधिकृतः परयोगेऽनुवृत्त्यभावात्। तस्मादेतद्वाक्यबलेन नेह कल्कनिर्यूहौ ग्राह्यौ। तर्हि किं ग्राह्यमित्याशङ्क्याह-कल्कसाध्यं घृतं मतमिति कल्कस्य मुख्यत्वान्मुख्ये हि कार्यसम्प्रत्ययः ॥ १४ ॥

इस पर दूसरे ने कहा—'नहीं, इस प्रकार विवाद समाप्त नहीं हो सकता। इसलिये ऐसा व्याख्यान करना ठीक होगा। 'यत्राधिकरणेनोक्तिः' इस वाक्य के अनुसार जहाँ पर अधिकाररूप से ही कहा गया हो वहाँ ही कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिए, अन्यत्र नहीं। इसके सिवा पिप्पल्यादिगण का अधिकार भी नहीं हैं क्यों कि अन्य योगों में इसका ग्रहण या अनुवृत्ति नहीं होती अर्थात् अन्य योगों के अन्दर इसे गण नहीं मानते। अतः इस वाक्य के बल से यहाँ पर कल्क और क्वाथ दोनों नहीं लेने चाहिए। ऐसी स्थिति में किंग्राह्य की शङ्का का 'कल्कसाध्यं घृतं मतम्' (केवल कल्कसाध्य घृत भी सम्मत है) वाक्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

द्वारा स्पष्ट निवारण हो जाता है क्यों कि कल्क ही मुख्य होता है इसलिये मुख्य द्वारा ही कार्य की सिद्धि करना श्रेय है ॥ १४ ॥

द्रव्याणां कल्कत्वे स्नेहसम्बन्धः साक्षाद्भवतीत्यतो मुख्यत्वं कल्कस्य, निर्यूहत्वेन तु परम्परया, ततो निर्यूहस्याप्राधान्यम्। जलेन, क्वाथकाले साक्षाद्द्रव्यसम्बन्धः, पश्चात् क्वाथस्य स्नेहसम्बन्ध इति पारम्पर्य्यम् ॥

कल्क मुख्य इसलिये माना गया है कि कल्क के द्रव्यों का स्नेह के साथ में प्रत्यक्ष या सीधा सम्बन्ध होता है। परन्तु क्वाथ के द्रव्यों का प्रत्यक्ष-सम्बन्ध न होकर परम्परा-सम्बन्ध होता है। इसलिये क्वाथ को प्रधानता नहीं दी गयी है। क्वाथ्य द्रव्यों का पहले जल के साथ में साक्षात् सम्बन्ध होता है फिर क्वथित जल द्वारा स्नेह से सम्बन्ध होता है यही परम्परा है ॥ १५ ॥

अधिकारतयोक्तिस्तु चरके चन्दनाद्यगुर्व्वादी गणावधिकृत्योक्तम्। कल्कक्वाथाभ्यां तैलं, कषायेनावगाहनम्, कल्केनोद्वर्त्तनलेपनादीनीति। तस्माद्यत्र यत्र गणेऽधिकारः कृतस्तत्र तत्र गणे कल्कक्वाथाविति ॥ १६ ॥

चरक ने चन्दनादि तथा अगुर्वादिगण अधिकार रूप से लिखे हैं और इनके द्वारा, कल्क क्वाथ से तैल, कषाय से अवगाहन और कल्क से उद्वर्तन तथा लेपन आदि का विधान बतलाया है। अतः जहां २ पर गणरूप से अधिकार कहा गया हो वहां २ के गणों का कल्क, क्वाथ दोनों लेने चाहिए ॥ १६ ॥

व्याख्यानञ्चैतत् प्रमादकृतम्। सुश्रुतोक्तवाक्यार्थेन सहानैक्यात्। उक्तं हि—॥ १७ ॥

उपरोक्त व्याख्यान प्रमाद से किया गया है क्यों कि सुश्रुत के वाक्यों के साथ इसका सादृश्य या ऐक्य नहीं होता। कहा भी है—॥ १७ ॥

यत्र द्वयोर्विरोधः स्यात्तत्र धर्म्मावुभौ स्मृतौ।
सम्भवत्येकवाक्यार्थं ह्यर्थभेदो न चेष्यते ॥ १८ ॥ इति।

जहां पर दो वचनों में विरोध होता है वहां पर दोनों मान्य समझे जाते हैं और यदि मतैक्य हो सके तो अर्थभेद करना ठीक नहीं होता ॥ १८ ॥

तस्मादेवं व्याख्याने भवत्यैक्यम् ॥ १९ ॥

इसलिये इस निम्न निर्दिष्ट व्याख्यान द्वारा ऐकमत्य हो सकता है ॥ १९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यत्राधिकरणे इति यस्मिन् स्थाने स्नेहसंविधौ स्नेहसाधनविधाने गणे द्रव्याणां समूहे कल्ककाथयोर्विशेषेण नोक्तिस्तत्रैव कल्कनिर्यूहाविति। अधिकरणशब्दस्तु स्थाने प्रयुज्यते सर्व्वैराचार्य्यैः यथाहि ॥ २० ॥

'यत्राधिकरणे' इत्यादि—अधिकरण अर्थात् स्थान, जिस स्थान पर, 'स्नेह संविधौ' यानी स्नेहपाक के विधान में गण या द्रव्यों के समूह का उल्लेख करने पर भी कल्क तथा क्वाथ में से किसि एक का विशेषरूप से निर्देश न हो, वहां पर कल्क और क्वाथ दोनों का ग्रहण करे। क्यों कि अधिकरण शब्द का सभी आचार्यों ने स्थान के अर्थ में ही प्रयोग किया है। जैसा कि ॥ २० ॥

तैत्तिरीयोपनिषद्युक्तं—

'अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः, पञ्चस्वधिकरणेष्विति ॥' तस्मादनिर्द्देशे यावान् द्रव्यगणः स्नेहसाधने निर्दिष्टः, स च द्रवगणः कल्कतया क्वाथतया प्रयोक्तव्यः। न चायं गणशब्दो गणसंज्ञया यो यो गणः पञ्चमूलादिरुक्तस्तन्मात्रे विवक्षितः किन्तु त्रिप्रभृतिद्रव्यसमूहे विवक्षितः, गणात्तस्मादित्युक्तेः ॥ २१ ॥

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है—'अब इसके बाद पाँच अधिकरणों (स्थान) में संहिता की उपनिषदों का व्याख्यान करेंगे'। इसलिये क्वाथ कल्क का निर्देश न होने पर जितना और जो द्रव्यों का समूह स्नेहपाक के लिये बतलाया जाय वही क्वाथ और कल्क के रूप में प्रयुक्त किया जाय। यह गणशब्द, संज्ञासूचक नहीं है जैसा कि 'पञ्चमूल' आदि में होता है, बल्कि द्रव्यों के समूह का वाचक है और दो से अधिक द्रव्यों के लिये प्रयुक्त होता है। इसीलिये 'गणात् तस्मात्' में 'तस्मात्' द्वारा उसी गण का सङ्केत है जिसका कि योग में उल्लेख रहता है, न कि सर्वत्र आने वाले संज्ञावाची गण का ॥ २१ ॥

तेन द्राक्षाघृतादौ द्राक्षामात्रसाध्यत्वात् कल्केन बोध्यं गणत्वाभावात्। न तु क्वाथकल्काभ्यामिति एवं हि न सुश्रुतार्थविरोधः। तस्मादिह पिप्पलाद्यघृतादौ कल्कक्वाथौ ग्राह्यौ न कल्कमात्रमिति निष्कर्षः ॥२२॥

इसलिये 'द्राक्षादिघृत' आदि में कल्क द्वारा सिद्ध करने का साफ उल्लेख किया गया है, क्यों कि वहाँ पर गण (द्रव्यों का समूह) तो है नहीं, बल्कि अकेले द्राक्षाद्वारा ही योग सम्पन्न होता है। इसमें क्वाथ और कल्क दोनों नहीं लिये जाते। इसलिये सुश्रुत के साथ में कोई विरोध भी नहीं पड़ता। अस्तु,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्कर्ष यह निकला कि पिप्पल्यादिघृत में कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिए न कि केवल कल्क, क्यों कि वहां पर गण है ॥ २२ ॥

अथ स्नेहपाकोऽयम् किं द्रवेणादौ कर्त्तव्यः पश्चात् कल्केन चतुर्गुणजलेनाऽथवाऽऽदौ कल्केन पश्चाद्द्रवेण कार्य्य इति चेन्न, सुश्रुतेनोक्तं-'स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कस्तदैकध्यं संसृज्य विपचेदिति' तस्मात् स्नेहे कल्कं द्रवञ्च दत्त्वैकत्र पचेदिति । न तु पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥

इसके बाद विमर्शनीय यह है कि क्या स्नेह-पाक पहले द्रव से करना चाहिए और बाद में कल्क से ? अथवा पहले चतुर्गुण जल से, फिर कल्क से, पश्चात् द्रव से करना ठीक होगा ? इस सन्देह का निवारण करते हुए सुश्रुत ने लिखा है—'स्नेह से चौगुना द्रव और चौथाई भेषजकल्क दोनों एक में मिला कर पाक करना चाहिए' इसलिये स्नेह में कल्क तथा द्रव दोनों देकर पकाना चाहिए अलग अलग नहीं ॥ २३ ॥

तत्राह कश्चित् ।

स्नेहान् विपाच्यैव विरामयेत्तु क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रम् ।
कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रं दध्यारनाले पुनरेकरात्रम् ॥ २४ ॥

किसी ने कहा है—स्नेह-पाक करने के बाद उसे एक निश्चित समय के लिये विरामार्थ रख देना चाहिए । यदि दूध में पाक करे तो दो रात, स्वरस में ३ रात, कल्क और कषाय में ५ रात और दही तथा काञ्जी में पाक करे तो १ रात रक्खे ॥ २४ ॥

प्रकाशन—यहाँ पर दिन न कह कर रात का निर्देश कर, कुछ विशेषता अभिप्रेत है । सम्भवतः दिन के लिखने पर १२ घण्टे का अर्थ समझ कर विराम-समय की न्यूनता की जा सकती थी । परन्तु रात्रि के निर्देश से यदि दो रात का समय दिया गया हो, तो दूसरी रात व्यतीत हो जाने पर ही समय पूरा समझा जायगा, बल्कि दो रातों का समय जोड़कर २४ घण्टे । इस प्रकार विरामाऽऽधिक्य के कारण उत्पन्न विशेषता के अतिरिक्त, रात्रि के असामान्य वायुमण्डल द्वारा असाधारण गुणाधान भी अवश्य हो जाता है । दधि तथा काञ्जी में सिद्ध स्नेह के लिये अम्ल—संसृष्ट होने के हेतु अधिक विराम की आवश्यकता नहीं होती ।

इत्यनेन पृथक्पृथग्विरामकालवचनात् क्षीरादिषु पृथक् पाकः, कल्के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च पृथक् पाक इति तन्न, सुश्रुतवचनविरोधात्, युक्तिविरोधाच्च। यदि हि पृथक् कल्केन पाक इष्यते स्नेहे किं कल्कं भृज्जेत्? ततः पाकार्थं चतुर्गुणं जलं दातव्यं चेत्तत्र परिभाषा 'स्नेहसिद्धौ द्रवेऽनुक्ते सर्व्वत्राभ्यश्चतुर्गुणमि'ति तत्र द्रवानुक्तौ जलं विहितं, न चोक्ते द्रवे सति जलविधानं, तस्मादेव सुश्रुतवचनाविरोधेनैवं व्याख्येयम्॥ २५॥

उक्त श्लोक में भिन्न २ पदार्थों में सिद्ध स्नेह के लिये पृथक् २ विराम काल दिये गये हैं। इसलिये क्षीरादिकों में पृथक् और कल्क में पृथक् पाक करना सिद्ध होता है। किन्तु यह नियम सुश्रुत के विरुद्ध होने से ठीक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त युक्ति से भी असङ्गत है। क्यों कि यदि कल्क से पृथक् पाक करना मान लिया जाय तो क्या कल्क स्नेह में भूंजना होगा? और इसके बाद पाक के लिये यदि चौगुना जल दे दिया जायगा तो 'स्नेहसाधन में द्रव का उल्लेख न होने पर सभी जगह चौगुना जल लेना चाहिये' इस परिभाषा के अनुसार द्रव न कहने पर जल का विधान होने से, द्रव का निर्देश होने पर जल का ग्रहण कदापि नहीं किया जा सकता। इसलिये ऐसी ही व्याख्या करनी चाहिए जिससे सुश्रुत के साथ विरोध न पड़े। व्याख्या निम्न प्रकार से संगत होगी॥ २५॥

क्षीरादिद्रवाणि कल्कञ्चैकध्यं संसृज्य विपचेत्। तत्र क्षीरञ्च कल्कश्च यत्र तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा द्विरात्रं विश्रामयेत्। यदि स्वरसश्च कल्कश्च यत्र तत्रैकध्यं संसृज्य पक्त्वा त्रिरात्रं विरामयेत्। यत्र कल्कश्च क्षीरादीनां द्वित्र्यादिकानि द्रवाणि च, तत्र कल्कं गर्भे दत्त्वा तत्तत् क्षीरादिकञ्च प्रत्येकं दत्त्वा संसृज्य पक्त्वा स्वस्वोक्तकालं विरामयेत्,—क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं कषाये पञ्चरात्रं दध्येकरात्रमारनाले चैकरात्रमिति कल्के चानुक्तद्रवे यत्र स्नेहपाकस्तत्र चतुर्गुणं जलं दत्त्वा संसृज्यैकध्यं पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत्, विशेषेण गुणाधानार्थम्॥ २६॥

क्षीरादि द्रव और कल्क एक में मिलाकर पकाना चाहिए। जहां पर क्षीर और कल्क दोनों हों वहाँ एक में पकाकर २ रात विश्राम के लिये रक्खे। यदि स्वरस और कल्क हों तो एक में पकाकर ३ रात रक्खे। जहां पर कल्क और क्षीरादि २ या ३ द्रव हों वहां पर कल्क तथा प्रत्येक क्षीरादि द्रव डालकर पकावे फिर प्रत्येक के लिये वर्णित विरामकाल तक रक्खे। जैसे-दूध में २ रात, स्वरस में ३ रात कषाय में ५ रात, दही और काञ्जी में १ रात। जहाँ पर द्रव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का निर्देश न हो वहाँ कल्क तथा चतुर्गुण जल डालकर पकावे और ५ रात रखे। यह विशेष गुणाधान के लिये है ॥ २६ ॥

उक्तं हि—

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ २७ ॥ इति ॥

कहा है—चूँकि वासी होने पर विशेष गुण उत्पन्न होते हैं इसलिये घृत तैल और गुड आदि को एक ही दिन में उतार नहीं लेना चाहिए ॥ २७ ॥

क्षीरादिभ्यो द्रवेभ्योऽन्यत्र द्रवे तक्रसुरासवादौ स्नेहपाक एकदिने सम्भवति तद्व्यावृत्त्यर्थं नैकाहादिति। विरामरात्रान्यूनत्वे तु विशेषेण गुणाधानाभावमात्रं, न तु स्नेहपाकासिद्धिरधिके च न दोष इति निष्कर्षः ॥ २८ ॥

यद्यपि क्षीरादि द्रवों के अतिरिक्त, मट्ठा, सुरा और आसव आदि में स्नेहपाक एक ही दिन में हो सकता है। तथापि निषिद्ध है। क्यों कि एक दिन में विशेष गुणाधान नहीं हो पाता। इसी निषेध के लिये 'नैकाहात्' कहा है। निष्कर्ष यह है–विरामकाल की कमी से स्नेहपाक की सिद्धि में कमी नहीं पड़ती किन्तु विशेष गुणाधान का अभाव हो जाता है तथा विरामकाल की वृद्धि से कोई दोष भी नहीं होता ॥ २८ ॥

अथ पाक-प्रकारः।

सुश्रुतेनोक्तं—

अत ऊर्ध्वं स्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः। स च त्रिविधस्तद्यथा। मृदुर्मध्यः खर इति। तत्र स्नेहौषधविवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुरिति मधच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः कृष्णमवसन्नमीषद्विशदं चिक्कणञ्च यत्र भेषजं स खर इति। अत ऊर्ध्वं दग्धस्नेहो भवति। तं पुनः साधु साधयेत्। तत्र पानाभ्यवहारयोर्मृदुः। नस्याभ्यञ्जनयोर्मध्यमः। वस्तिकर्ण-पूरणयोस्तु खर इति ॥ १ ॥

सुश्रुत ने कहा है—इसके बाद स्नेह पाक की विधि का क्रम कहते हैं। स्नेहपाक ३ प्रकार का होता है, (१) मृदु (२) मध्य (३) खर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१) जिसमें स्नेह तथा औषधि दोनों का ज्ञान हो उसे 'मृदु' कहते है। (२) मोम के समान विशद अर्थात् बिखरने वाला एवं कर्छी आदि में न लगने वाला कल्क यदि हो जाय तो 'मध्यम' समझना चाहिये। (३) 'खर' पाक वह होता है जिसमें औषधकल्क काला, जला सा, कुछ २ विशद और चिकना हो जाता है। इसके बाद भी यदि पाक किया जाय तो स्नेह जल जाता है। इसे 'दग्ध-स्नेह' कहते हैं। इसको दुबारा पकाना (पूर्ववत्) चाहिए। इनमें से मृदु, पान और खाने के काम में आता है, मध्यम, नस्या तथा अभ्यङ्ग आदि के लिये और खर, वस्तिकर्म एवं कर्ण में डालने के लिये प्रयुक्त होता है ॥ १ ॥

भवतश्चात्र—

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेणस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ २ ॥

सिद्ध स्नेह के लक्षणः—

जब स्नेह के अन्दर का शब्द तथा फेन बिलकुल शान्त हो जाय और गन्ध, वर्ण, रस आदि भली भांति उत्पन्न हो जायँ तब स्नेह सिद्ध हुआ-ऐसा समझना चाहिए ॥ २ ॥

घृतस्येवं विपक्वस्य जानीयात् कुशलो भिषक्।
फेणोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ ३ ॥ इति ॥

उपरोक्त लक्षण घृतपाक के समझना चाहिए। तैल में फेन अधिक पैदा होता है बाकी सब लक्षण घृत के समान ही होते हैं ॥ ३ ॥

चरके तु—

स्नेहपाकस्त्रिधा ज्ञेयो मृदुर्मध्यः खरस्तथा।
तुल्ये कल्केन निर्य्यासे भेषजानां मृदुः स्मृतः ॥ ४ ॥

चरक ने भी ऐसा ही लिखा हैः—

मृदु, मध्य, और खर के भेद से स्नेहपाक ३ प्रकार का होता है। जहां पर अवशिष्ट औषधि कल्क के समान अर्थात् पृथक् हो सके उसे 'मृदु-पाक, कहते हैं ॥ ४ ॥

संयाव इव निर्य्यासो मध्ये दर्व्वीं विमुञ्चति।
शीर्य्यमाणे तु निर्य्यासे वर्त्यमाने खरस्तथा ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब कल्क पिट्टी के समान होकर कर्छी को छोड़ दे तब मध्य, और जब कल्क की वर्ती या गोली बनाने पर वह कणशः बिखर जाय तब 'खर' पाक समझना चाहिए ॥ ५ ॥

खरोऽभ्यङ्गे स्मृतः पाको मध्यो नस्यक्रियासु च।
मृदुपाकस्तु पानार्थं वस्तौ वापि नियोजयेत् ॥ ६ ॥ इति।

अभ्यङ्ग में खर, नस्यादि कार्यों में मध्य और पान तथा वस्तिकर्म आदि में मृदुपाक प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ६ ॥

अन्यत्र चोक्तं—

स्नेहस्य त्रिविधः पाको मृदुर्मध्यः खरस्तथा।
स्नेहपाको भवेत् कल्के मृदुरङ्गुलिलेपिनि।
न गृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्य्यमाणे खरः स्मृत ॥ ७ ॥

अन्यत्र भी लिखा है:—

मृदु, मध्य और खर ३ प्रकार का पाक होता है। यदि कल्क, उंगलियों में चिपटे तो मृदु, न चिपटे तो मध्य, और बिखर जाय (गोली न बँधे) तो 'खर' पाक होता है ॥ ७ ॥

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद् भवेत्।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

जब स्नेह के कल्क की आसानी से वत्ती बन जाय और आग में डालने से कोई शब्द न हो तब भली प्रकार सिद्ध समझना चाहिए ॥ ८ ॥

नस्ये मृदुर्भवेत् किट्टं पेये, किट्टं तु मध्यमम्।
नातिखरं पचेद्वस्तौ खरमभ्यङ्गने पचेत् ॥ ९ ॥ इति ॥

नस्य कार्य में मृदु, पेय या पान में किट्ट (मध्यम) वस्ति में कुछ २ खर, और अभ्यङ्ग में खर का प्रयोग करे ॥ ९ ॥

गुड़पाकलक्षण—

सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः।
पीडितो भजते मुद्रां गुड़ः पाकमुपागतः ॥ १० ॥

मलने तथा छूने में कोमल, या चिकना, गन्ध वर्ण एवं रस से पूर्ण और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दबाने पर मुद्रा का आकार अर्थात् पिट्ठी का रूप धारण कर लेने वाला गुड़ पक्व समझना चाहिए ॥ १० ॥

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।
क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्य्यते ॥ ११ ॥
यदा दर्व्वीप्रलेपः स्यात् यदा वा तन्तुलीभवेत् ।
एष पाको गुडादीनां सर्व्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ १२ ॥

जो गुड़ जल-पूर्ण पात्र में डालने पर डूब जाय और इधर-उधर न फैल कर निश्चल रूप से स्थिर रहे हत्थे में चिपट जाय और जिस में हत्थे के ऊपर उठाने से सूत की तरह तार निकले वह सिद्ध माना जाता है। यह सब प्रकार के गुड़ों के पाक का लक्षण है ॥ ११-१२ ॥

रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्गाढमर्द्दनात् ।
गुडवद् गुग्गुलोः पाकः सबन्धस्तु विशेषतः ॥ १३ ॥

गुण के समान ही गुग्गुलु का पाक भी होता है। इस में भी मर्दन से गोली बनती है। विशेषता केवल रस और गन्ध में पायी जाती है ॥ १३ ॥

मण्डूराणाञ्च सर्व्वेषां पाकोऽयं परिकीर्तितः ॥ १४ ॥

सब प्रकार के मण्डूरों का भी यही पाकक्रम है ॥ १४ ॥

वरं पाको मृदुः कार्यस्तथापि न खरो मतः ।
स किञ्चिद् वीर्यमाधत्ते तज्जहाति खरः पुनः ॥
सर्वेषामिह द्रव्याणां मध्यपाकः प्रशस्यते ॥ १५ ॥

सब द्रव्यों का मध्यपाक ही अच्छा होता है। फिर भी खर की अपेक्षा मृदुपाक ही अच्छा होता है। क्यों कि मृदुपाक में कुछ वीर्य तो अवश्य ही रहता है, परन्तु खर-पाक में तो एकदम नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

एवमेव क्षारतोयं साधयेत्तु क्षतादिषु ।
फेनोद्गमेऽस्य निष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ॥
स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ १६ ॥ इति ॥

इसी प्रकार क्षत आदि के लिये क्षारजल भी सिद्ध करना चाहिए। इसमें जब झाग आने लगे और फटे दूध के समान हो जाय तब पाक का समय समझ लेना चाहिए ॥ १६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्नं यवागूरित्येवं द्विविधं भक्तसाधनम्।
यथोचितं तण्डुलानां साधनं त्वन्नमुच्यते ॥ १७ ॥

भक्तः—अन्न और यवागू भेद से दो प्रकार का भात आयुर्वेदशास्त्र का अभिमत है। अन्न, उचित चावलों के पाक को कहते हैं ॥ १७ ॥

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत्।
यवागूस्त्रिविधा मण्डः पेया चापि विलेप्यपि ॥ १८ ॥

यवागू उसे कहते हैं, जिस में उचित चावलों से चौथाई का पाक किया जाता है। यह ३ प्रकार की होती है। १ मण्ड, २ पेया, ३ विलेपी ॥ १८ ॥

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता।
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ १९ ॥

सीत या चावलों से रहित मण्ड, सिक्थ-युक्त पेया, बहुत सीतों (सिवथ) वाली यवागू तथा जो कम तरल (गाढ़ी) हो उसे 'विलेपी' कहते हैं ॥ १९ ॥

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे।
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ॥ २० ॥
अत्र यवागूः पेया पारिशेष्यात्त्रिविधासु।

चावलों से पाँचगुने जल में अन्न, चौगुने जल में विलेपी, १४ गुने में मण्ड और ६ गुने जल में यवागू सिद्ध की जाती है। यहाँ पर यवागू पेया का ही प्रकार है ॥ २० ॥

यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ २१ ॥

शीत किये हुये पक्व जल में षडङ्गादि का प्रयोग किया जाता है—अर्थात् १ कर्ष द्रव्य १ प्रस्थ जल में पका कर सिद्ध करना पड़ता है ॥ २१ ॥

क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले।
अर्द्धशृत प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ २२ ॥

आदिशब्देन यूषादिग्रहणम्।

पान तथा पेया आदि के बनाने के लिये १ पल द्रव्य को कूट कर ६४ पल या ४ प्रस्थ जल में पकावे और अर्द्ध-अवशिष्ट रहने पर काम में लावे। यहाँ पर आदि शब्द से यूष वगैरह का ग्रहण होता है ॥ २२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्वाथ्यद्रव्यपलं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके ।
अर्द्धश्रृतेन तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पना ॥ २३ ॥

क्वाथ्य द्रव्य १ पल, जल १ आढक, दोनों पकावे। आधा बाकी रहने पर इस के द्वारा यवागू आदि की कल्पना करे ॥ २३ ॥

प्रकाशन—उक्त तीनों श्लोक एक ही अभिप्राय रखते हैं। इन के अन्दर श्रृत शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रायः श्रृत शब्द का अर्थ, वाष्प को ठण्डा कर के पुनः जल रूप में परिणत करने का होता है। इसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने डिस्टिल्ड वाटर (Distilled Water) के नाम से लिखा है। परन्तु यहाँ पर क्वथितावशिष्ट जल प्रयुक्त किया गया है।

द्विविधं क्वाथकल्काभ्यां यवाग्वादेस्तु साधनम् ।
क्वाथेनोक्तमिदं कल्केनात ऊर्ध्वन्तु वक्ष्यते ॥ २४ ॥

यवागू आदि की कल्पना क्वाथ और कल्क दोनों से होती है। क्वाथ द्वारा कल्प्य यवागू का वर्णन पीछे किया जा चुका है और कल्क द्वारा का वर्णन किया जायगा ॥ २४ ॥

कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ।
विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ॥ २५ ॥

पीपल और सोंठ दोनों मिला कर आधा कर्ष और कल्क-द्रव्य (चावल आदि) १ पल, १ प्रस्थ जल में पकावे। अर्द्धावशिष्ट रहने पर काम में लावे। यहाँ पीपल, सोंठ ये निकाले नहीं जाते ॥ २५ ॥

प्रकाशन—यहाँ पर प्रस्थ में एकत्व विवक्षित करने का अभिप्राय यह है कि आवश्यकतानुसार जल की मात्रा भी बढ़ायी जा सके। इस लिये योग्य चिकित्सक को चाहिए कि वह अग्नि, बल का विचार कर के जल की मात्रा घटा बढ़ा ले ॥

यूषाँश्च रसकाँश्चैव कल्पेनानेन साधयेत् ।
अर्द्धशिष्टो भवेद् यूषः क्वचित् पादावशेषितः ॥ २६ ॥

उपरि निर्दिष्ट विधि के अनुसार ही यूष और रस की भी कल्पना की जाती है। परन्तु यूष, अर्द्धावशिष्ट या चतुर्थांशावशिष्ट रक्खा जाता है ॥ २६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अष्टादशगुणे तोये यूषमिच्छन्ति केचन।
चतुर्दशगुणे तोये यूषमिच्छन्ति चापरे॥ २७॥

कुछ लोग यूष को १८ गुने जल में और कुछ लोग १४ गुने जल में पकाना अच्छा समझते हैं॥ २७॥

रसे साध्ये जलं देयं मांसं सिद्ध्यति यावता।
पलानि द्वादश प्रस्थे, घनेऽथ तनुके च षट्॥
मांसस्य वण्टनं कुर्यात्, पलमच्छतरे रसे॥ २८॥

मांस सिद्ध करने के लिये उतना जल देना चाहिए जितने में पक जाय। यदि गाढ़ा बनाना हो तो १२ पल मांस में १ प्रस्थ पानी और पतले के लिये ६ पल मांस में १ प्रस्थ पानी मिलाना चाहिए। परन्तु अत्यन्त तरल बनाने के लिये १ प्रस्थ जल में १ पल मांस ही डालना चाहिए॥ २८॥

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः॥ २९॥

क्षीर-पाक के विधान में पाच्य द्रव्य से अठगुना दूध और दूध से चौगुना जल डाल कर पकावे। दूध बाकी रह जाने पर काम में लावे॥ २९॥

क्षीरपाकविधानेन, काञ्जिकस्यापि साधनम्॥ ३०॥

क्षीर-पाक के समान ही काञ्जी की कल्पना की जाती है॥ ३०॥

अथ प्रक्षेपविचारः।

प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात्, स्नेहे कल्कसमो मतः॥ १॥

प्रक्षेप के द्रव्य, क्वाथ्य द्रव्यों से चौथाई क्वाथ के लिये और कल्क के बराबर स्नेह के लिये प्रयुक्त होते हैं॥ १॥

प्रक्षेप—क्वाथ, अवलेह आदि के सम्पन्न होने पर जो द्रव्य ऊपर से डाल कर मिलाये जाते हैं, उन्हें 'प्रक्षेप्य' और इस क्रिया को 'प्रक्षेप' कहते हैं।

तत्र विशेषमाह—

षोडशाष्टचतुर्भागैर्वाते पित्ते कफे क्रमात्।
क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा॥ २॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्वाथ के लिये मधु, वात, पित्त और कफ में क्रम से षोडशांश, अष्टमांश, और चतुर्थांश प्रक्षेपार्थ प्रयुक्त होता है। परन्तु शर्करा (चीनी) इसके ठीक विपरीत अर्थात् वात में चतुर्थांश, पित्त में अष्टमांश एवं कफ में षोडशांश प्रयुक्त होती है ॥ २ ॥

मात्रा क्षौद्रघृतादीनां स्नेहे क्वाथे च चूर्णवत् ॥ ३ ॥

कुछ लोगों को स्नेह और क्वाथ में मधु तथा घृत आदि की मात्रा चूर्ण के समान ही अभिप्रेत है ॥ ३ ॥

जीरकं गुग्गुलुं व्योषं शिलाजतु च शाणिकम् ।
हिङ्गुसिन्धूद्भवक्षारं क्वाथे तु माषिकं क्षिपेत् ॥
क्वाथोऽत्र कर्षानिष्पन्नोऽनया रीत्याऽधिकेऽधिकम् ॥ ४ ॥

क्वाथ में जीरा, गुग्गुलु, त्रिकटु (सोंठ मिर्च पीपल) और शिलाजतु एक-एक शाण तथा हिंगु, सैन्धव और क्षार आदि एक एक मात्रा प्रक्षेपार्थ डालना चाहिए। उक्त प्रक्षेप के द्रव्यों की मात्रा १ कर्ष क्वाथ के लिये बतलायी गयी है, इसलिये अधिक में तदनुसार ही बढ़ा लेना चाहिए ॥ ४ ॥

घृतं क्षीरं गुडं खण्डं मूत्रं कल्कं सितोपलाम् ।
चूर्णादिकञ्च तत्क्वाथे प्रक्षिपेच्छाणमानतः ॥ ५ ॥

क्वाथ के अन्दर घी, दूध, गुड, खाँड, गोमूत्र, कल्क, मिश्री और चूर्ण आदि १ शाण की मात्रा में डालना चाहिये। यहाँ पर कुछ लोगों ने शाण न मान कर कर्ष माना है ॥ ५ ॥

प्रायो न पाकश्चूर्णानामासन्नपाक एव तु ।
प्रक्षेपो भूरिचूर्णस्य स्वल्पस्य पाकमागते ॥ ६ ॥
नारिकेलामृतादौ तु शुण्ठीचूर्णं विपच्यते ।
तत्र पाकविधानोक्तेर्विशेषत्वाच्चिकित्सकैः ॥ ७ ॥

अधिकतर प्रक्षेप में कहे हुए चूर्णों का क्वाथ के साथ में पाक नहीं किया जाता। हाँ यदि चूर्ण अधिक मात्रा में होता है तो पाक पूर्ण होने से कुछ पूर्व छोड़ देते हैं। परन्तु यदि चूर्ण कम मात्रा में रहता है तो पूर्णतः पाक होने पर ही छोड़ा जाता है। नारिकेलामृतादि पाक में जो शुण्ठी चूर्ण के पकाने का विधान बतलाया गया है, वह खास कर उसी के लिये कहा गया है अन्यत्र के लिये नहीं ॥ ६-७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः ॥ ८ ॥

चूर्ण में यदि गुड़ डालना हो तो चूर्ण के बराबर और यदि मोदक या वटी बनाना हो तो दूना छोड़ना चाहिए ॥ ८ ॥

भावनाविधिः।

दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत्।
शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं यथोक्तं भावनाविधिः ॥
भावनायां द्रवो देयः सम्यगार्द्रत्वकारकः ॥ ९ ॥

भावित द्रव्यों के चूर्ण को दिन में धूप में सुखाना और रात में भावक पदार्थ से भिगोना चाहिए। साथ ही साथ घोटना भी चाहिए। यही भावना की विधि है। भावना के लिये द्रव्य में उतना ही द्रव देना चाहिए जितने में भावद्रव्य भली भांति भीग जाय तथा न अधिक पतला हो और न अधिक सूखा ॥ ९ ॥

स्वरसाभावे विधानम्।

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे।
वारिण्यष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १० ॥

भावक पदार्थों का स्वरस न मिल सके तब सूखे द्रव्य लेकर अठगुने जल में चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ कर ले। इसी से भावना दे ॥ १० ॥

अथवा—

भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्।
अष्टांशशेषः कर्त्तव्यो भाव्यानां तेन भावना ॥ ११ ॥

क्वाथ के लिये भाव्य द्रव्य के समान क्वाथ्य (जिसका क्वाथ करना है) और क्वाथ्य द्रव्यों से अठगुना जल लेकर अष्टमांशावशेष काढ़ा कर ले। इसी से भाव्य द्रव्य को भावित करे ॥ ११ ॥

भावनायां द्रवप्रमाणम्।

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत्।
द्रवप्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ १२ ॥

भावना के लिये द्रव का प्रमाण यही है कि जितने द्रव में भाव्य पदार्थ एक में मिल कर भली प्रकार भीग जाय ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पानीयो यस्तु गुल्मादौ स क्षारस्त्वेकविंशतिम् ।
वारांस्तु षड्गुणे तोये स्रावयेद्वा चतुर्गुणे ॥ १३ ॥

गुल्म आदि रोगों के लिये जो पानीयक्षार बतलाया गया है, वह ६ गुने अथवा चौगुने जल में २१ वार स्रावण (छानना) करने से कार्ययोग्य होता है ॥१३॥

इति प्रकाशितं प्रकाशिकयाऽव्यक्तप्रकरणम् ।

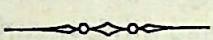

अथ लेशोक्तविवेकः ।

लवणे सैन्धवन्तूक्ते चन्दने रक्तचन्दनम् ।
शकृद्रसे गोमयरसः सिद्धार्थे श्वेतसर्षपः ॥ १ ॥

यदि केवल लवण ही कहा गया हो तो सैन्धव, चन्दन कहा हो तो रक्तचन्दन, शकृद्रस (पुरीष का स्वरस) कहा हो तो गोबर का रस और सरसों कहा हो तो सफेद सरसों लेना चाहिए ॥ १ ॥

क्षीरे घृतेऽथ मूत्रे च गव्यमेव विधीयते ।
स्त्रीणां तीक्ष्णं गवां मूत्रं न तु पुंसां विधीयते ॥ २ ॥
पित्तात्मिका स्त्रियः सर्वाः सौम्यास्तु पुरुषा यतः ।
चतुष्पात्सु स्त्रियः श्रेष्ठा विहगेषु लघुः पुमान् ॥ ३ ॥

केवल दूध, घी और मूत्र, यदि कहा गया हो तो 'गौ' का लेना चाहिए। यद्यपि ये नर-गो (बैल) के भी प्राप्त किये जा सकते हैं तथापि स्त्री जाति में विशेष तीक्ष्णता होने के कारण उसी का ग्रहण किया जाता है। स्त्री, पित्त प्रधान तथा पुरुष सौम्यगुणयुक्त होते हैं—इसलिये चौपायों में स्त्रियाँ तथा पक्षियों में पुरुष उत्तम माने जाते हैं ॥ २-३ ॥

मयूरी जम्बुकी छागी वीर्यहीना विशेषतः ।
शृगालबर्हिणौ पाके पुमांसौ तत्र दापयेत् ॥ ४ ॥
न वृद्धं न च बालं च न स्रवद्बीजशोणितम् ।
वयःस्थं सम्पूर्णधातुं पुमांसं योजयेदजम् ॥ ५ ॥
हित्वा स्त्रीपुरुषौ च्छागौ क्लीबं वा तत्र दापयेत् ।
भाषितः काशिराजेन च्छाग एव नपुंसकम् ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मयूरी, शृगाली (गीदड़ी) तथा बकरी हीनवीर्य होती हैं। इसलिये विशेष वचन के अनुसार शृगाल एवं मयूर का उल्लेख होने पर पुरुष का ही ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार छाग भी नर ही लिया जाता है। यह छाग, वृद्ध या बाल नहीं होना चाहिए, इसका रक्त तथा वीर्य निकलता हुआ न हो, पूर्णावस्था से युक्त और सब धातुओं से परिपूर्ण हो। काशिराज जी का मत है कि छाग में स्त्री-पुरुष दोनों ही न लेकर क्लीब का प्रयोग करे। इस तरह नपुंसक छाग ही का प्रयोग बतलाया गया है ॥ ४–६ ॥

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ ७ ॥

इसका अर्थ अव्यक्त—प्रकरण में लिखा गया है ॥ ७ ॥

केवलव्रीहिजन्त्वङ्गक्काथो व्युष्टस्तु दोषलः।
स्यात्ततो वर्जयेद् व्युष्टमन्यमिश्रो न दोषलः ॥ ८ ॥

केवल धान्य तथा किसी जन्तु के अङ्ग द्वारा सिद्ध क्काथ बासी होने पर दूषित हो जाता है–इसलिये यह वर्जित है। शेष मिश्रण विकृत नहीं होते ॥ ८ ॥

जाङ्गलानां वयस्थानां चर्मरोमनखादिकम्।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे तु ग्राहयेत् ॥ ९ ॥

जवान जङ्गली जीवों के चर्म, नख, रोम आदि लेना चाहिए और दूध, मूत्र, विष्ठा ये आहार के जीर्ण हो जाने पर ग्राह्य होते हैं ॥ ९ ॥

द्रव्याण्यभिनवान्याहुः प्रशस्तानि क्रियाविधौ।
ऋते गुड-घृत-क्षौद्र-धान्य-कृष्णा-विडङ्गतः ॥ १० ॥

गुड़, घी, मधु, धनिया, पीपल और वायविडङ्ग को छोड़ कर सभी द्रव्य नवीन ही क्रिया के लिये उत्तम होते हैं ॥ १० ॥

वाल्मीक-कूप तरुतल-रथ्या-देवायतन-श्मशानेषु।
जाता विधिनापि हृता ओषध्यः सिद्धिदा न स्युः ॥ ११ ॥

चाहे कितनी ही विधिपूर्वक क्यों न ग्रहण की जायँ, बाँबी, कुंआ, वृक्षों के नीचे, गलियों में, देव मन्दिरों और श्मशानों में उत्पन्न वनस्पतियाँ सिद्धिदायक नहीं होतीं ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. JG Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वल्मीक-कुत्सितानूप-श्मशानोषरभूमिजाः ।
जन्तुव्याधिहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १२ ॥

बाँवी, गन्दे स्थान, जलपूर्ण प्रदेश, श्मशान और ऊषर में उत्पन्न तथा जन्तु व्याधि एवं पाले से शोषित ओषधि कार्यसाधक नहीं होतीं ॥ १२ ॥

जलजीर्णमग्निकवलितमकालरूढं क्रिमिक्षतशरीरं च ।
न्यूनं वाप्यधिकतरं द्रव्यमभक्ष्यं जगुर्भिषजः ॥ १३ ॥

जल से सड़े हुए, अग्नि से दग्ध, अकाल में उत्पन्न, क्रिमि कीटद्वारा भक्षित एवं अल्प या अधिक मात्रा में द्रव्य नहीं सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।
विरेकत्रमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ १४ ॥

सभी कार्यों के लिये शरत् ऋतु में ओषधि लेना चाहिए क्योंकि उस समय सरस रहती हैं। परन्तु विरेचन तथा वमन के लिये वसन्त ऋतु के बाद में लेना अच्छा है ॥ १४ ॥

ऊर्द्ध्वमाच्छादिते देशे वस्त्रादिप्रावृते तथा ।
गृहे वा निर्जने पूते भेषजं कारयेद् बुधः ॥ १५ ॥

ऊपर छत युक्त स्थान में या कपड़ा से तने हुए प्रदेश में अथवा पवित्र एवं निर्जन गृह में ओषधि निर्माण करना चाहिए ॥ १५ ॥

न कार्य्यमौषधं शून्ये नौकायां हट्टमण्डपे ।
पथि वृक्षतले वापि शून्ये शून्यफलं लभेत् ॥ १६ ॥

ओषधि, शून्य स्थान (खण्डहर आदि) में नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि शून्य में शून्य ही फल होता है। इसी प्रकार नौका, दूकान के बराण्डे, रास्ते और वृक्षों के नीचे भाग में भी वर्जित है ॥ १६ ॥

ऊर्द्ध्वमुखैः शिलापुत्रैः शिलायां क्षादयेद् यदि ।
तदा द्विगुणवीर्य्यं स्यादीशानाभिमुखो यदि ॥ १७ ॥

ईशान दिशा की ओर मुख कर के पत्थर की शिला पर पत्थर द्वारा ही यदि ओषधि कूटी जाय तो दूना वीर्य या बल बढ़ जाता है ॥ १७ ॥

तिन्तिडीखदिरादीनां सुदृढे विमले तथा ।
उदूखले क्षोदयित्वा ग्राह्यं भेषजमुत्तमम् ॥ १८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इमली, खदिर आदि की निर्मल एवं दृढ ओखली में कूट कर औषध प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १८ ॥

वात-पित्तकफघ्नानां काष्ठानामग्नियोगतः ।
भेषजं शमयेदाशु वात-पित्त-कफामयान् ॥ १९ ॥

वात पित्त तथा कफ को नाश करने वाले द्रव्य, अग्नि संयोग से सिद्ध होने पर क्रमशः वात पित्त तथा कफ के रोगों को नाश करते हैं ॥ १९ ॥

मृत्पात्रे ताम्रपात्रे वा पात्रे लौहसमुद्भवे ।
सौवर्णे राजते वापि भेषजं विपचेद्भिषक् ॥ २० ॥

मिट्टी के पात्र में, तांबे के पात्र में, लोह के पात्र में तथा सुवर्ण या चांदी के पात्र में ओषधि पकाना चाहिए ॥ २० ॥

स्नेहाद्याः पूर्णवीर्य्याः स्युराचतुर्थमासतः परम् ।
अब्दादूर्ध्वं घृतं सिद्धं हीनवीर्य्यत्वमाप्नुयात् ॥ २१ ॥
तैले विपर्य्ययं विद्यात् पक्केऽपक्के विशेषतः ।
स्नेहसिद्धो गुडादिस्तु हीनवीर्य्योऽब्दतो भवेत् ॥ २२ ॥
गुडिका लेह ओषध्यो लघुवीर्य्यास्तु याः पुनः ।
तेषामब्दात् परं वीर्य्यहानिश्चूर्णे द्विमासतः ॥ २३ ॥

स्नेह द्रव्य ४ मास के बाद पूर्णवीर्य होते हैं । घी एक वर्ष बाद हीनवीर्य हो जाता है । परन्तु तैल १ साल बाद भी हीनगुण नहीं होता चाहे वह पक्व हो या अपक्व । स्नेहसिद्ध गुड आदि भी १ साल बाद हीनवीर्य हो जाता है । गोली अवलेह तथा अल्पवीर्य ओषधियाँ १ वर्ष बाद क्षीणशक्ति हो जाती हैं और चूर्ण दो मास बाद ही ।

प्रकाशन—गीली वायु, पात्रों की अशुद्धता तथा अन्य द्रव्यों का संयोग न होने देने से उक्त समय के बाद भी ओषधियाँ हीनवीर्य नहीं हो सकतीं ॥ २१-२३ ॥

रजस्वला प्रसूता वा पाषण्डी वा यदि स्पृशेत् ।
आमयी वा च भैषज्यं निर्वीर्य्यं जायते तदा ॥ २४ ॥

रजस्वला स्त्री, प्रसूता या बौद्ध भिक्षुक आदि अथवा रोगी यदि ओषधि को छूए तो वह वीर्यरहित हो जाती है ॥ २४ ॥

दिवा श्रृतन्तु यत्तोयं रात्रौ तद् गुरुतां व्रजेत् ।
रात्रौ श्रृतं दिवा चापि गुरुत्वमधिगच्छति ॥ २५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिन में पकाया हुआ जल रात में तथा रात में पकाया हुआ दिन में गुरु हो जाता है ॥ २५ ॥

घृते तैलं च योगे च यद् द्रव्यं पुनरुच्यते ।
प्रभेदाभावतो ज्ञेयं भागतो द्विगुणं तु तत् ॥ २६ ॥

घी, तैल आदि योगों में यदि कोई द्रव्य दो बार आया हो यदि उस नाम का कोई अन्य द्रव्य योग के लिये उपयोगी न हो तो उसे दुगुना समझना चाहिए ॥ २६ ॥

कदाचिद् द्रव्यमेकं वा यदि योगे न लभ्यते ।
तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्त्तेन गृह्यते ।
द्रव्याभावे तु तत्तुल्यं द्रव्यमेव प्रदीयते ॥ २७ ॥

यदि योग में उल्लिखित कोई द्रव्य कारणवश प्राप्त न हो सके तो उस के सदृशगुण वाला ले लेना चाहिए । क्योंकि द्रव्याभाव में तत्सदृश द्रव्य का ही विधान है ॥ २७ ॥

मध्वभावे गुडो जीर्णः शाल्यभावे तु षष्टिकः ।
क्षीराभावे तु मौद्गः स्याद् यूषो मासूर एव वा ॥ २८ ॥
द्राक्षायाश्चापरिप्राप्तौ काश्मर्य्याः फलमिष्यते ।
अभावे तगरस्यापि प्ररोहः शीतलीभवः ॥ २९ ॥
वृक्षाम्लं दाडिमाभावे सिताया खण्डमिष्यते ।
चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत् स्मृतौ ॥ ३० ॥
सौराष्ट्रमृत्तिकाभावे ग्राह्या स्यात् पङ्कपर्पटी ।
मूर्व्वाभावे त्वचो ग्राह्या लताजिङ्गिनिसम्भवाः ॥ ३१ ॥
अभावे पृश्निपर्ण्यास्तु शालपर्णी विधीयते ।
रसाञ्जनापरिप्राप्तौ दार्वीकाथो विधीयते ॥ ३२ ॥
कर्पूरस्याप्यभावे तु सुगन्धिमुस्तकं स्मृतम् ।
कस्तूरीणामभावे तु ग्राह्या गन्धशटी बुधैः ॥ ३३ ॥
लौहाभावे तु मण्डूरं दार्व्यभावे निशा मता ।
सुवर्णरूप्ययोर्लाभाभावे लौहं प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥
मुञ्जातकफलाभावे तालमस्तकमिष्यते ।
वाराहीणामभावे तु चर्म्मकारालुको मतः ॥ ३५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋद्ध्यभावे बलां दद्याद् वृद्ध्यभावे महाबलाम् ।
मेदाभावे चाश्वगन्धा महामेदे च शारिवा ॥ ३६ ॥
जीवकर्षभकाभावे गूडूचीवंशलोचने ।
काकोलीयुगलाभावे प्रदद्याच्च शतावरीम् ॥ ३७ ॥ इति ।

अर्थ स्पष्ट है ॥ २८–३७ ॥

चरकेणोक्तं—'पञ्चकषायाः पञ्च कषाययोनयः पञ्चविधं कषायकल्पन'मिति । पञ्च कषाययोनय इति । मधुरकषायोऽम्लकषायः कटुकषायस्तिक्तकषायः कषायकषाय इति । पञ्चविधं कषायकल्पनमिति । स्वरसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च कषाय इति ॥ ३८ ॥

चरक ने ५ कषाय, ५ कषाययोनि और ५ कषाय–कल्पना उल्लिखित की हैं । मधुर द्रव्यों से बना हुआ कषाय, अम्ल से बना हुआ कषाय, कटु द्रव्यों से बना कषाय, तिक्त द्रव्यों से बना कषाय, कषाय द्रव्यों से बना कषाय, ये ५ कषाय योनियाँ हैं । स्वरस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट ये ५ प्रकार के कषाय हैं—इनकी कल्पना को पञ्चकषायकल्पना कहते हैं ॥ ३८ ॥

यन्त्र-प्रपीडनाद् द्रव्याद्रसः स्वरस उच्यते ।
यत् पिण्डं रसपिष्टानां स कल्कः परिकीर्त्तितः ॥ ३९ ॥

यन्त्र द्वारा निचोड़ कर द्रव्य के निकाले हुए रस को 'स्वरस' कहते हैं और यदि पीस कर पिण्ड सा बना लिया जाय तो 'कल्क' कहते हैं ॥ ३९ ॥

वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं शृतमाहुश्चिकित्सकाः ।
द्रव्यादापोत्थितात्तोये यत् पुनर्निशि संस्थितात् ।
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ॥ ४० ॥

जो अग्निद्वारा उबाला जाता है उसे 'शृत' या काढ़ा कहते हैं । कूटे हुए द्रव्य को जल में भिगों कर रात भर रखने के बाद जो रस निकाला जाता है उसे 'शीत' कहते हैं ॥ ४० ॥

क्षिप्तोष्णतोये मृदितं यत् तत् फाण्टं परिकीर्त्तितम् ॥ ४१ ॥

गरम जल में ओषधि डाल कर बाद में मल कर जो द्रव लिया जाता है उसे 'फाण्ट' (चाय) कहते हैं ॥ ४१ ॥

तेषां यथापूर्वं बलाधिक्यमतः कषायकल्पना व्याध्यातुरबलापेक्षिणी न त्वेवं खलु सर्व्वाणि सर्व्वोपयोगीनि भवन्तीति ॥ ४२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त स्वरस आदि यथाक्रम एक दूसरे से बलवान् होते हैं। अतः कषाय रोगी का बलाबल देख कर प्रयोग करना चाहिए। ये सर्वत्र सर्वथा उपयोगी नहीं होते ॥ ४२ ॥

अन्यच्च—

स्वो रसः स्वरसः प्रोक्तः कल्को दृषदि पेषितः।
क्वथितस्तु श्रृतः शीतः शर्व्वरीमुषितो मतः ॥ ४३ ॥

द्रव्य का अपना रस 'स्वरस', पत्थर पर पिसा हुआ 'कल्क', उबाला हुआ 'श्रृत' पानी में भिगो कर रात भर रखा हुआ 'शीत' कहाता है ॥ ४३ ॥

क्षिप्त्वोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते।
गुरवः स्युर्यथा पूर्व्वं लघवश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४४ ॥

गरम जल में मल कर निकाला हुआ 'फाण्ट' कहलाता है। ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से बलवान् या गुरु होते हैं ॥ ४४ ॥

एवञ्चान्यत्रापि—

आहृतात्तत्क्षणं द्रव्यात् क्षुण्णात् कीटादिवर्जितात्।
किञ्चिज्जलोपसिक्तात् स्वः पीडितः स्वरसो रसः ॥ ४५ ॥

तुरन्त ली हुई वनस्पति से जो कि कीटादि से रहित हो, तनिक जल से छिड़क निचोड़ कर जो रस निकाला जाता है उसे 'स्वरस' कहते हैं ॥ ४५ ॥

कुडवं कुट्टितं द्रव्यं क्षिप्तञ्च द्विगुणे जले।
अहोरात्रोषितात्तस्माद्रसः स्वरस उच्यते ॥ ४६ ॥

१ कुडव द्रव्य दूने जल में भिगो कर दिन-रात रख कर जो द्रव निकाला जाता है उसे 'स्वरस' कहते हैं। यह अन्य विधि है ॥ ४६ ॥

आदाय शुष्कं द्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ४७ ॥

जब द्रव्य शुष्क हो तथा स्वरस निकलना असम्भव हो तो अठगुने जल में चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ कर ले ॥ ४७ ॥

पाषाणपेषितः कल्कः क्वाथो निर्यूह उच्यते।
द्रव्यमापोथितं कृत्वा कर्षादिकपलान्ततः।
जले षोडशिके पक्त्वा क्वाथः स्यात् पादशेषितः ॥ ४८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पत्थर पर पीसे हुए को 'कल्क' और उबाले हुए को 'निर्यूह' (श्रृत) कहते हैं। क्वाथ, १ कर्ष से १ पल तक द्रव्य को सोलह गुने जल में डाल कर उबालने के बाद चतुर्थांशावशेष रखने को कहते हैं ॥ ४८ ॥

षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलाच्छीतफाण्टयोः।
आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥ ४९ ॥

१ पल द्रव्य को ६ पल जल में सिद्ध करने को 'शीत' और ४ पल में सिद्ध करने को 'फाण्ट' कहते हैं। परन्तु स्वरस के लिये द्रव्य दो पल लिया जाता है। यह दूसरा मत है ॥ ४९ ॥

इदञ्चोच्यते।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्।
निशोषितं हिमं स स्यान्नाम्ना शीतकषायकः ॥ ५० ॥

२ पल द्रव्य ६ पल जल में भिगो कर रात भर रख देते हैं। प्रातः इससे निकले हुए द्रव्य को 'हिम' या 'शीत कषाय' कहते हैं ॥ ५० ॥

जले चतुःपले तृष्णे क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत्।
मृत्पात्रे मर्द्दयेद्गाढं फाण्ट इत्यभिधीयते ॥ ५१ ॥

४ पल उष्ण जल में १ पल द्रव्य डाल कर मिट्टी के पात्र में खूब मले। निःसृत द्रव को 'फाण्ट' कहते हैं ॥ ५१ ॥

द्विपलं भेषजस्यात्र दत्त्वा जलचतुःपले।
मर्द्दयेत्तेन निर्यासो यः स्यात् स्वरस उच्यते ॥ ५२ ॥

२ पल ओषधि, ४ पल जल में डाल कर मल कर छानने से जो रस निकलता है उसे 'स्वरस' कहते हैं ॥ ५२ ॥

कण्डितं तण्डुलपलं जले त्वष्टगुणे क्षिपेत्।
धौतं कृत्वा जलं तच्च तण्डुलोदकमुच्यते ॥ ५३ ॥

तुष (भूसी) रहित चावल १ पल अठगुने जल में डाल कर भिगोने के बाद चावलों को धोकर लिये हुए जल को 'तण्डुलोदक' कहते हैं ॥ ५३ ॥

शालितण्डुलपानीयं ज्ञेयं ज्येष्ठाम्बुसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

शालि चावलों को धोकर लिया हुआ जल 'ज्येष्ठाम्बु' कहलाता है ॥ ५४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्यूनश्चेन्मात्रया द्रव्यं न व्याधीन् विनिवर्त्तयेत् ।
मात्रयाऽधिकया युक्तं जनयेच्चापरं गदम् ॥ ५५ ॥

मात्रा से कम ओषधि रोग को दूर करने की क्षमता नहीं रखती तथा अधिक अन्य रोग उत्पन्न कर देती है ॥ ५५ ॥

नाल्पं हन्त्यौषधं व्याधीन् यथाऽऽपोऽल्पा महानलम् ।
दोषवच्चातिमात्रं स्यात् सस्येष्वत्युदकं यथा ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार थोड़ा जल भयङ्कर अग्नि को शान्त नहीं कर पाता ठीक उसी तरह अल्प मात्रा में ओषधि रोग नष्ट नहीं कर पाती और अधिक मात्रा में खेत की फसल में अत्यन्त जल की भाँति हानि पैदा करती है ॥ ५६ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

वस्तुतः ओषधि की कोई निश्चित मात्रा नहीं हो सकती। क्योंकि यह मात्रा, दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, द्रव्य तथा कोष्ठ की शक्ति पर निर्भर करती है ॥ ५७ ॥

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चार्द्धैश्च मध्यमे ।
जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च ॥ ५८ ॥

स्नेह, क्वाथ आदि काष्ठौषधियों की उत्तम मात्रा १ पल, मध्यम ३ कर्ष और नीच ½ आधा पल होती है ॥ ५८ ॥

मोदकं वटकं लेहं कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
कर्षद्वयं पलं वात्र देयं कोष्ठाद्यपेक्षया ॥ ५९ ॥

मोदक, वटी, अवलेह की मात्रा १ कर्ष होती है। परन्तु फिर भी २ कर्ष या १ पल की मात्रा कोष्ठ आदि की क्षमता देख कर दी जा सकती है ॥ ५९ ॥

सार्द्धपलं पलञ्चार्द्धपलञ्च गुड-खण्डयोः ।
श्रेष्ठमध्यमहीनेषु मात्रेयं तु विधीयते ॥ ६० ॥

गुड़ और खांड की मात्रा डेढ़ पल उत्तम, १ पल मध्यम और आधा पल हीन मानी गयी है ॥ ६० ॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाष्टचतुष्टयैः ।
माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रां कोष्ठं वीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ ६१ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोष्ठ की क्षमता देख कर उत्तम, मध्यम एवं हीन श्रेणी के पुरुषों को गुग्गुलु की मात्रा क्रमशः १२, ८ और ४ माषा देनी चाहिए ॥ ६१ ॥

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च सर्व्वशः ।
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥ ६२ ॥

चूर्ण, कल्क और गुडिका १ कर्ष की मात्रा में १ शुक्ति द्रव के साथ अर्थात् द्विगुण द्रवके साथ चाटना चाहिए । किन्तु पीने के लिये द्रव चौगुना देना चाहिए ॥

जिह्वावलेह्यो लेहः स्याद् द्विगुञ्जा वटिका मता ॥ ६३ ॥

जो वस्तु जिह्वा से चाटी जा सके उसे 'अवलेह' या 'चटनी' कहते हैं । गोली २ रत्ती की बनायी जाती है ॥ ६३ ॥

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥
एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत् संवत्सरो भवेत् ॥ ६४ ॥

१ मास के बच्चों के लिये ओषधि की मात्रा १ रत्ती होती है । यह मधु, दूध, शर्करा या घृत के साथ में चटानी चाहिए । प्रतिमहीने में १ रत्ती मात्रा बढ़ाते हुये १ साल तक बढ़ाना चाहिए ॥ ६४ ॥

वर्षादूर्ध्वं माषवृद्धिर्यावत् स्यात् षोडशाब्दिकः ।
षोडशाब्दात् परं यावत् सप्तत्यब्दवयो भवेत् ॥
एवमेव विभागः स्यात्तदूर्ध्वं ह्रासयेत् पुनः ॥ ६५ ॥

१ साल के बाद से १६ साल तक हर-एक साल १ माषा ओषधि बढ़ानी चाहिए । पुनः यह मात्रा ७० वर्ष तक स्थिर रखनी चाहिए । तदनन्तर हरसाल १ माशा घटाना अच्छा होता है ॥ ६५ ॥

आसप्तवर्षबालस्य प्रतिमर्षो विधीयते ।
रेचनं पञ्चमाद्वर्षाद् धूमन्तु द्वादशात् परम् ॥ ६६ ॥

सात वर्ष की आयु के बाद प्रतिमर्ष, पांच वर्ष के बाद रेचन तथा १२ वर्ष के बाद धूम्रपान कराना ठीक होता है ॥ ६६ ॥

ऊनद्वादशवर्षस्य न हितं दन्तधावनम् ।
न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे ॥ ६७ ॥

१२ वर्ष के पहले 'दन्तधावन' कराना लाभप्रद नहीं होता, एवं सात वर्ष के पहले तथा ८० वर्ष के बाद 'नस्य' देना भी ठीक नहीं होता ॥ ६७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न चोनद्वादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे ।
न शुद्धिरूनदशमे तथातिक्रान्तसप्ततौ ॥ ६८ ॥

१२ वर्ष के पहले 'धूम' ४ वर्ष के पहले 'कवल' दश वर्ष के पहले तथा ७० वर्ष के बाद 'शोधनकर्म' हितकर नहीं होता ॥ ६८ ॥

आजन्म मरणं शस्तः प्रतिमर्षस्तु बस्तिवत् ॥ ६९ ॥

'बस्ति' कर्म की तरह 'प्रतिमर्ष' भी जन्म से मरण पर्यन्त तक लाभप्रद ही रहता है। इससे बस्ति की भी सर्वकालीनता सिद्ध है ॥ ६९ ॥

प्रतिमर्षोऽवपीडश्च नस्यं प्रधमनं तथा ।
शिरोविरेचनञ्चेति नस्तः कर्म्म च पञ्चधा ॥ ७० ॥

'नस्यकर्म' ५ प्रकार का होता है-प्रतिमर्ष, अवपीड, नस्य, प्रधमन, शिरो-विरेचन ॥ ७० ॥

ईषदुत्सिङ्घनात् स्नेहो यावान् वक्त्रं प्रपद्यते ।
नस्तो निषिक्तं तं विद्यात् प्रतिमर्ष प्रमाणतः ॥ ७१ ॥

नासिका में डाला हुआ स्नेह-द्रव्य यदि जरा-सा खींचने पर वक्त्र (मुख नासा नलिका) में चला जाय 'तो प्रतिमर्ष की ठीक मात्रा है' ऐसा समझना चाहिए ॥ ७१ ॥

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा ततः ।
अवपीड्य दीयते यः सोऽवपीडः स उच्यते ॥ ७२ ॥

शोधन और स्तम्भन भेद से 'अवपीड' दो प्रकार का होता है। जब द्रव्यों को निचोड़ कर उसके रस का प्रयोग करते हैं तब वह 'अवपीड' कहा जाता है ॥ ७२ ॥

नस्ये तु बिन्दवस्त्वष्टौ तर्ज्जनीपर्व्वयुग्मजाः ।
स्नेहस्य मात्रा सा शुक्तिर्नस्यं नावनमुच्यते ॥ ७३ ॥

तर्जनी उंगली के दो पर्वों को स्नेह में डुबो कर उस से यदि ८ बिन्दु गिराये जायँ तो इस परिमाण को 'शुक्ति' कहते हैं। यही नस्य या नावन की मात्रा है॥ ७३॥

शुक्तिश्च परमा शुक्तिः पाणिशुक्तिस्त्रिधा मता ।
अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद्बिन्दवः क्रमशश्च ताः ॥ ७४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुक्ति, परमशुक्ति तथा पाणिशुक्ति ये 'शुक्ति' के ३ प्रकार हैं। शुक्ति ८ बुन्द की, परमशुक्ति १६ बुंद की और पाणिशुक्ति ३२ बुंद की होती है ॥ ७४ ॥

द्वात्रिंशद्बिन्दवश्चापि शुक्तिरित्यभिधीयते ।
द्वे शुक्ती परमा शुक्तिः पाणिशुक्तिश्चतुर्गुणा ॥ ७५ ॥

कुछ लोग ३२ बुंद की 'शुक्ति' और दो शुक्ति की 'परमशुक्ति' तथा ४ शुक्ति की 'पाणिशुक्ति' मानते हैं ॥ ७५ ॥

कराङ्गुली पर्व्वयुगं द्रवमध्ये निमज्जयेत् ।
तल्लग्नं यावदुत्तिष्ठेद् द्रवं तद्बिन्दुसञ्ज्ञकम् ॥ ७६ ॥

उंगली के दो पर्वों को द्रव में डुबो कर द्रव को गिरावे। उस में से जितना द्रव गिरे उतने को 'बिन्दु' कहते हैं ॥ ७६ ॥

षडङ्गुलद्विमुखया नाड्या भैषज्यगर्भया ।
मुखेन प्रधमेच्चूर्णं न्यस्तया नासरन्ध्रयोः ।
एवं तु प्रधमेच्चूर्णं तस्मात् प्रधमनं स्मृतम् ॥ ७७ ॥

६ अङ्गुल की दो मुख वाली नलिका में ओषधि द्रव्य भर कर रोगी की नासा के छिद्रों पर रख कर मुख से फूकना चाहिए। चूँकि इस में प्रधमन (फूकना) क्रिया का विधान है—इसलिये इसे 'प्रधमन' कहते हैं ॥ ७७ ॥

चत्वारो बिन्दवः षड् वा तथाष्टौ वा यथाबलम् ।
शिरोविरेचने योज्या ऊर्ध्वजत्रुविकारिणाम् ॥ ७८ ॥

ऊर्ध्व जत्रु के रोगियों के लिये शिरोविरेचन में चार, ६ या आठ बुन्द बलाबल देख कर देना चाहिए ॥ ७८ ॥

प्रतिसारणगण्डूषकवलग्रहमेव च ।
मुखरोगादिषु प्रोक्तं त्रिधा कर्म्म तदुच्यते ॥ ७९ ॥

मुख आदि के रोगों में प्रतिसारण, गण्डूष और कवलग्रह ये तीन प्रकार के 'चिकित्साकर्म' बतलाये गये हैं ॥ ७९ ॥

अङ्गुल्यग्रेण चूर्णाद्यैर्घर्षणं प्रतिसारणम् ।
असञ्चार्य्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्त्तिता ।
सुखं सञ्चार्य्यते या तु मात्रा सा कवलग्रहे ॥ ८० ॥

अङ्गुली के अग्र भाग से चूर्ण आदि के घिसने को 'प्रतिसारण' मुख में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्रव पदार्थ के भली भाँति भरने को 'गण्डूष' और ओषधि द्रव्यों को चबा कर इधर उधर घुमाने को 'कवलग्रह' कहते हैं ॥ ८० ॥

नेत्ररोगेषु कर्म्माणि पञ्च चोक्तानि तानि तु ।
विडालक आश्च्योतनमञ्जनं तर्पणं तथा ॥
पुटपाकश्च कर्म्माणि नेत्ररोगेषु पञ्चधा ॥ ८१ ॥

नेत्र रोगों में भी ५ प्रकार के चिकित्सा कर्म कहे हैं। विडालक, आश्च्योतन, अञ्जन, तर्पण और पुटपाक ॥ ८१ ॥

अक्ष्णोर्यस्तु बहिर्लेपः स विडालकसञ्ज्ञितः ॥ ८२ ॥

आखों के पुटों तथा पलकों पर जो लेप किया जाता है उसे 'विडालक' कहते हैं ॥ ८२ ॥

निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम् ।
शुक्त्या प्रलम्बयान्येन पिचुवर्त्त्या कनीनिके ॥ ८३ ॥
दश द्वादश वा बिन्दून् द्व्यङ्गुलादवसेचयेत् ।
तदाश्चोतनमित्याहुर्यथाविधि निषेचनम् ॥ ८४ ॥

वायु रहित स्थान में, रोगी की आँख को बायें हाथ से खोल कर लम्बी सीप से अथवा पिचुवर्ति से १० या १२ बुन्द दो अङ्गुल की ऊँचाई पर से दक्षिण-हस्त द्वारा कनीनिका (तारा या पुतली) पर टपकाने को 'आश्चोतन' कहते हैं ॥ ८३-८४ ॥

अञ्जनं त्रिविधं प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ।
दृष्टिप्रसादनञ्चेति कषायाम्लपटूषणैः ॥
लेखनं रोपणं तिक्तैः स्वादुशीतैः प्रसादनम् ॥ ८५ ॥

अञ्जन भी ३ प्रकार का होता है लेखन, रोपण और दृष्टिप्रसादन। कषाय, अम्ल, नमकीन और कटु द्रव्यों द्वारा 'लेखन' तिक्त द्रव्यों द्वारा 'रोपण' और स्वादु तथा शीत पदार्थों द्वारा 'प्रसादन' होता है ॥ ८५ ॥

दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ॥ ८६ ॥
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा ।
अङ्गुल्येव सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥ ८७ ॥

दश अङ्गुल लम्बी, गोल मुख वाली और बीच में पतली शलाका अञ्जन के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिये उपयुक्त होती है। यह शलाका लेखन के लिये ताम्र की, रोपण के लिये लौह की और प्रसादन के लिये चाँदी या सोने की होनी चाहिये ॥ ८६-८७ ॥

पिण्डी रसक्रिया चूर्णं त्रिधैवाञ्जनकल्पना ॥ ८८ ॥

पिण्डी, रसक्रिया एवं चूर्ण भेद से ३ प्रकार का अञ्जन होता है ॥८८॥

निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः।
काले साधारणे प्रातः सायञ्चोत्तानशायिनः ॥ ८९ ॥
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोशाद्बहिः समाम्।
द्व्यङ्गुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत् ॥ ९० ॥
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्ताम्बुप्रविलायितम्।
आपक्ष्माग्रादथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः ॥ ९१ ॥

सिर और शरीर को शुद्ध करने के बाद समशीतोष्ण ऋतु में वायुरहित स्थान में प्रातः-सायं पीठ के बल लेटा कर 'तर्पण' का प्रयोग करना चाहिए। नेत्रकोश के बाहर अर्थात् पलकों के समीपस्थ भाग पर यव और उड़द के गुंथे आटे से दो अङ्गुल ऊंची बराबर मुंडेर बना कर तप्त जल से पिघलाया हुआ घी (ओषधि सिद्ध) आँखों (निमीलित) पर बरुनी डूबने तक भर दे। तदनन्तर धीरे २ आंख खोलना शुरू करे। इस में २ सेकण्ड का अन्तर देना चाहिए ॥८९-९१॥

मात्रां विगणयेत्तत्र वर्त्म सन्धिसितासिते।
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पञ्च च ॥ ९२ ॥
शतानि सप्त चाष्टौ च दश मन्थेऽनिले दश।
पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च बलाशे पञ्च धारयेत् ॥ ९३ ॥
कृत्वा पाङ्गे तयोर्द्वारं स्नेहं पात्रे विगालयेत्।
पिबेच्च धूमं नेत्रेण व्योम रूपञ्च भास्वरम् ॥ ९४ ॥
इत्थं प्रतिदिनं वायौ पित्ते त्वेकान्तरं कफे।
स्वस्थे च द्व्यन्तरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् ॥ ९५ ॥

यह तर्पण की संख्या इस भाँति मानी गयी है। वर्त्म के रोगों में सौ, सन्धि के रोगों में ३००, नेत्र के श्वेत भाग के रोगों में ५००, कृष्ण भाग के रोगों में ७००, दृष्टिगत रोगों में ८०० तथा अधिमन्थ एवं वातज रोगों में १०००। पित्तजरोगों में ६००, कफजरोगों और स्वस्थमनुष्यों में ५००।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस के बाद नेत्र के किनारों की ओर से स्नेह को किसी पात्र में गिरा ले। पश्चात् धूम्रपान करे और आकाश तथा चमकीली वस्तु नहीं देखना चाहिये। इस प्रकार वातज रोगों में प्रतिदिन, पित्तज में एक दिन का अन्तर (Alternate) देकर एवं स्वस्थावस्था में तथा कफज रोगों में २ दिन का अन्तर देकर जब तक पूर्ण 'तर्पण' (१) न हो जाय करना चाहिए।

प्रकाशन—यह पात्रीकरण का विधान आजकल के अभिस्नापकपात्र (Eye-bath glass) से कहीं अच्छा है। क्योंकि इसमें पात्रीकारक द्रव्यों का भी कुछ विशेष प्रभाव होता है॥ ९२-९५॥

पुटपाकं प्रयुञ्जीत पूर्वोक्तेष्वेव पद्मसु।
बिल्वमात्रं पृथक् पिण्डं मांसभेषजकल्कयोः॥ ९६॥
उरुवूकवटाम्भोजपत्रैः स्निग्धादिषु क्रमात्।
वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः॥ ९७॥
पचेत् प्रदीप्तमग्न्याभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम्।
नेत्रे तर्पणवद् युञ्ज्याच्छृतं द्वे त्रीणि धारयेत्।
लेखनस्नेहनान्त्येषु कोष्णौ पूर्वौ हिमः परः॥ ९८॥

पूर्वोक्त रोगों में ही पुट-पाक का प्रयोग करना पड़ता है। इसके लिये लगभग बेल के बराबर (एक २ पल) मांस और ओषधि का कल्क पिण्ड बना लें, इसे एरण्ड के पत्तों से 'स्नेहन' में, वट के पत्तों से लेखन में, कमल के पत्तों से रोपण में लपेट कर कपड़मिट्टी कर दें। इसे धव, धामिन और उपलों की आग में पका कर लाल करें। इस की मिट्टी हटा कर कल्क में से निचोड़ कर स्वरस निकाल लें। इस स्वरस को तर्पण की तरह लेखन में सौ, स्नेहन में दो सौ और रोपण में ३०० मात्रा तक धारण करें। यह स्वरस लेखन तथा स्नेहन में कुछ गरम और रोपण में शीत होना चाहिए।

इति श्रीकविवर-गङ्गाधररायसङ्कलिता प्रकाशिका-
प्रकाशिता-आयुर्वेदीयपरिभाषा समाप्ता।

---

(१) तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि लक्षयेत्।
'सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्।
निर्वृतिर्व्याधि-विध्वंसः क्रियालाघवमेव च॥' इति। (सु० उ०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ

आयुर्वेदीयपरिभाषायाम्—

परिशिष्टम्

आयुर्वेद संसार में 'कालिङ्ग' तथा 'मागध' नाम से प्रचलित मानों का उल्लेख भूरि २ पाया जाता है। इनमें 'मागध' चरक-सम्मत एवं 'कालिङ्ग' सुश्रुताभिमत माना गया है। यह कालिङ्ग-मान (सुश्रुतोक्त) मागधमान (चरकोक्त) से आधा होता है 'चरकोक्तकर्षार्द्धः सुश्रुतोक्तकर्षः' इति। परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई उपस्थित यह होती है कि कविराज जी ने सुश्रुत के सुवर्ण-माष को स्मृति-वर्णित-माष के बराबर माना है जो कि ५ कृष्णल या ५ रत्ती का होता है क्योंकि व्यवहार-बुद्धि से विचार करने पर स्मृतिप्रोक्त ३ यव का कृष्णल आधुनिक एक रत्ती से भी क्या कम हो सकता है? और तदनुसार उसका माष ५ रत्ती का हो जाता है, और इस प्रकार सुश्रुत का सुवर्ण या कर्ष जो १६ सुवर्ण-माष का होता है, आधुनिक मान से १० माशे का ही होता है। अब यदि इस कर्ष की तुलना चरकोक्त कर्ष से की जाय तो यह चरक-कर्ष से आधा नहीं होता क्योंकि वह एक तोले का होता है।

वस्तुतः सुश्रुत का एक धान्य माष ४ रत्ती के बराबर ही होना चाहिए जैसा कि चरक का धान्यमाष होता है और इस प्रकार ३ रत्ती का सुवर्ण-माष तथा ६ माशे का कर्ष (सुवर्ण) होता है जो कि चारक-कर्ष से स्पष्ट आधा है।

निम्नलिखित तालिकाओं में चरकोक्त तथा सुश्रुतोक्त मानों का वर्णन परिष्कृत रूप में दिया जाता है, साथ ही साथ आधुनिक प्रचलित मान से तुलना भी कर दी गयी है। इस प्रकार पाठकगण यह स्पष्ट देख सकते हैं कि एक मान दूसरे से ठीक आधा है। ये दोनों मान अत्यन्त आवश्यक हैं इसलिये इन पर विशेष ध्यान रखना जरूरी है।

(१) मागध या चरकोक्त मानः—

		आधुनिक मानः—
२ तण्डुल	= १ धान्यमाष	= ½ रत्ती
२ धान्यमाष	= १ यव (बृहत्)	= १ रत्ती
४ यव	= १ अण्डका	= २ रत्ती
४ अण्डका	= १ माषक	= १ माशा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मागध या चरकोक्त मानः—		आधुनिक मानः—
३ माषक	= १ शाण	= ३ माशा
२ शाण	= १ द्रंक्षण	= ६ माशा
२ द्रंक्षण	= १ कर्ष	= १ तोला
२ कर्ष	= १ पलार्द्ध	= २ तोला
२ पलार्द्ध	= १ पल	= ४ तोला
२ पल	= १ प्रसृत	= ८ तोला
२ प्रसृत	= १ कुडव	= १६ तोला
२ कुडव	= १ मानिका	= ऽ।=२ तोला
२ मानिका	= १ प्रस्थ	= ऽ।।।४ तोला
४ प्रस्थ	= १ आढक	= ऽ३≫१ तोला
४ आढक	= १ द्रोण	= १२ सेर १२ छ. ४ तोला
२ द्रोण	= १ शूर्प	= २५ सेर ९ छ. ३ तोला
२ शूर्प	= १ गोणी	= १ मन २१ सेर ३छ.१तोला
१०० पल	= १ तुला	= ५ सेर
३२ शूर्प	= १ वाह	= २०मन १६ सेर ३छ.१तोला

(२) कालिङ्ग या सुश्रुतोक्त मानः—		आधुनिक मानः—
धान्य माष	= चरक के समान	= ⅛ रत्ती
१२ धान्य-माष	= १ सुवर्णमाष	= ३ रत्ती
१६ सुवर्ण माष	= १ सुवर्ण या कर्ष	= ६ माशा
४ कर्ष	= १ पल	= २ तोला
४ पल	= १ कुडव	= ८ तोला
४ कुडव	= १ प्रस्थ	= ऽ।=२ तोला
४ प्रस्थ	= १ आढक	= ऽ१॥–३ तोला
४ आढक	= १ द्रोण	= ऽ६।=२ तो०
१०० पल	= १ तुला	= २॥ सेर
२० तुला	= १ भार	= १ मन १० सेर

नोटः—यह मान १०–११ पृष्ठ पर सुश्रुत के शब्दों में उद्धृत हैं। उक्त तालिका में दिये मान के अतिरिक्त भी चरकोक्त मान–संकेतों को आधा कर के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुश्रुत के मान संकेत निकाले जा सकते हैं। यहाँ पर पृष्ठ ११ की तालिका से विरोध मालूम पड़ता है जोकि स्मृतिप्रोक्त मानों से समन्वय करने के कारण हो गया है, क्योंकि स्मृतिप्रोक्त कृष्णल व्यावहारिक दृष्टि को रखते हुए १ रत्ती का मान लेना पड़ा है। मेरे विचार से यदि इसे $\frac{3}{4}$ रत्ती का मान लिया जाय तो वर्तमान प्रचलित मान के साथ समस्त मानों का सामञ्जस्य आसानी से स्थापित हो सकता है।

'रसरत्नसमुच्चय' में ८ तोले का पल बतलाया गया है जोकि चरकोक्त पल से भी दूना है। अतः वहां पल से लेकर सभी मान चारकमान से दूने हो जायंगे।

आधुनिक प्रचलित मानः—

८ चावल या ४ यव	= १ रत्ती
८ रत्ती	= १ माशा
१२ माशा	= १ तोला
५ तोला	= १ छटाक
१६ छटाक	= १ सेर
४० सेर	= १ मन

डाक्टरीमान (Avoirdupois weight)

अल्प मूल्य तथा भारी वस्तुओं के लियेः—

१६ ड्राम	= १ औंस
१६ औंस	= १ पौण्ड (lb.)
२८ पौण्ड	= १ क्वार्टर
४ क्वार्टर	= १ हण्डरवेट (Cwt)
२० हण्डरवेट	= १ टन (२७ ऽ२॥)
१ क्युविकइञ्च	= २५२॥ ग्रेन

डाक्टरी तथा प्रचलित मानः—

१८० ग्रेन	= १ तोला
१ औंस	= २॥ तोला (प्रायः)
१ पौण्ड	= ३९॥ तोला
१ क्वार्टर	= ।ऽ३॥।—१ तोला
१ हण्डरवेट	= १।ऽ५।
८२ पौण्ड	= १ मन
१ ग्रेन	= लगभग $\frac{1}{2}$ रत्ती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्रव-द्रव्यों का डाक्टरी मानः—

६० बूंद = १ ड्राम
८ ड्राम = १ औंस
२० औंस = १ पिंट (Pt.)
२ पिंट = १ क्वार्ट (Qt.)
४ क्वार्ट = १ गैलन (Gal.)
१ गैलन = १० पाउण्ड
= ऽ४॥।≈ के लगभग

शुष्क द्रव्यों का डाक्टरी मानः—

Apothecaries weight

२० ग्रेन = १ स्क्रुपुल
३ स्क्रुपुल = १ ड्राम
८ ड्राम = १ औंस
१२ औंस = १ पौंड
४८० ग्रेन = १ औंस (T.)
४३७ ½ " = १ औंस (A.)
३ ½ " = १ करात
५७६० " = १ पाउण्ड (lb.)
७००० " = ॥ (A. b.)

द्रवों के कुछ प्रचलित मापः—

१ टीस्फून फुल	= १ ड्राम	= २ माशे
१ डेजार्ट स्फून फुल	= २ ड्राम	= ४ माशे
१ टेबिल स्पून फुल	= ४ ड्राम	= ८ माशे
१ हाफ् वाइन ग्लास	= १ औंस	= २॥ तोला
१ स्माल वाइन ग्लास	= २ औंस	= ५ तोला
१ ब्रेकफास्ट कप् फुल	= ८ औंस	= १ पाव
१ टी कप् फुल	= ५ औंस	= २॥ छटाक

चूर्णः—अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।
चूर्णं तच्च रजः क्षोद-स्तस्य पर्य्याय उच्यते ॥

किसी पूर्ण शुष्क द्रव्य को भली भांति पीस कर एक कपड़े से छान लिया जाता है तो उसे 'चूर्ण' कहते हैं। रज और क्षोद इसके समानार्थवाची शब्द हैं। यह चूर्ण चालनी से छाना हुआ या वगैर छाना भी हो सकता है परन्तु वह शास्त्रीय तथा उत्तम नहीं माना जाता।

वटीः—चूर्णित द्रव्य में कोई द्रव मिला कर जो उसकी गोली बना ली जाती है 'वटी' कहलाती है। शास्त्रों में यद्यपि इसके अनेक पर्याय-वाचक शब्द पाये जाते हैं जैसे-वटक, मोदक, पिण्डी, गुड, वर्त्ति, गुटिका-आदि, तथापि यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो वे एक दूसरे के पर्यायवाची न हो कर कुछ न कुछ आत्मीय विशेषता अवश्य ही रखते हैं। यह विशेषता उनके आकार-प्रकार की विभिन्नता एवम् उनकी निर्माण-विधि की असाधारणता पर निर्भर करती है। इसीलिये कहा है—

वटको मोदकः पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथा वटी।
वटिका गुटिका चेति संज्ञाऽवान्तरभेदतः॥
मात्रा-च्छाया-ऽऽतपच्छेद-वास-विश्लेष-पेषणैः।
मन्थ-पीडन-संयोग-जल-काल-बलाबलैः॥
द्रव्यं गुणान्तराधानं विशिष्टं क्रियते यतः।
तेन मोदकचूर्णादि वटकाश्च यथाश्रुति॥' इति।

पुटपाकः—पुटे पक्वस्य द्रव्यस्य स्वरसो गृह्यते यतः।
अतोऽयं पुटपाकः स्याद् विधानं तस्य कथ्यते॥

पुटपाक—विधि के द्वारा पकाये हुए द्रव्य का स्वरस इसमें लिया जाता है, अतः इसको पुट-पाक कहते हैं।

पुट-पाक-विधिः—

द्रव्यमापोथितं जम्बू-वट-पत्रादि-सम्पुटे।
वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा॥
लेपञ्च द्व्यङ्गुलं स्थूलं कुर्याद् वाऽङ्गुष्ठमात्रकम्।

द्रव्य का कल्क बना कर उसके गोले को जामुन या वट के पत्रों में लपेट कर सूत से मजबूत बाँध कर ऊपर से दो अंगुल अथवा अंगुष्ठ-मात्र मोटा लेप कर दे और इस गोले को आग में पकावे।

पाक-परिचयः—पुट-पाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता।
जब लाल हो जाय तब पाक हुआ समझे।

उदाहरणार्थं कुटजत्वक्पुटपाकः—

तत्कालाकृष्ट-कुटज-त्वचं तण्डुलवारिणा।
पिष्टां चतुष्पलमितां जम्बूपल्लववेष्टिताम्॥
सूत्रबद्धां च गोधूम-पिष्टेन परिवेष्टिताम्।
लिप्तां च घनपङ्केन गोमयवह्निना पचेत्॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अङ्गारवर्णा च मृदं दृष्ट्वा वह्निः समुद्धरेत् ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

अवलेह या रसक्रियाः—

क्वाथादेर्यत्पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता ॥
सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ।
द्रवं चतुर्गुणं दद्या·दिति सर्वत्र निश्चयः ॥

क्वाथ आदि का पुनः पाक कर जो ठोस या घन पदार्थ प्राप्त किया जाता है उसे अवलेह, लेह या रसक्रिया कहते हैं । इस की मात्रा बलाबल के अनुसार १ पल तक की होती है । अवलेह में दिये जाने वाले चूर्ण से शर्करा चौगुनी डालनी चाहिए । यदि गुड देना हो तो उसे दूना ही डाले । द्रव पदार्थ भी चूर्ण से चौगुना ही डालना चाहिए । यहां पर 'क्वाथादि' के आदि पदसे स्वरस अभिप्रेत है ।

आसव और अरिष्टः—

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।
अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः ॥

विना पकायी हुई ओषधियों को जल में डाल सन्धान कर जो मद्य-युक्त द्रव बनाया जाता है उसे 'आसव' कहते हैं । परन्तु अरिष्ट,—ओषधियों का जल में क्वाथ बना कर सिद्ध किया जाता है । अरिष्ट का क्वाथ कर के तथा आसव का विना क्वाथ किये सन्धान किया जाता है । इसी लिये कहा हैः—

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् ।
आसवारिष्टभेदैस्तत् प्रोच्यते ..... ॥

अनुक्तमान में द्रवादि का ग्रहणः—

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडात्तुलाम् ।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥

एक द्रोण द्रव में १ तुला गुड और गुड से आधा मधु तथा गुड का दशम भाग ($\frac{१}{१०}$) ओषधियों का प्रक्षेप डालना चाहिए । इस अनुपात में अधिक मीठा होने के कारण ठीक २ उठता नहीं अतः मधु या गुड को वैकल्पिक समझना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए । यदि क्वाथ में सन्धान करना हो तो क्वाथ के नियमानुसार चतुर्गुण या अष्टगुण जल डालकर सिद्ध क्वाथ में उक्त अनुपात से अन्य द्रव्यों को छोड़ कर आसुत करना चाहिए।

पानक या शर्बत:—किसी द्रव्य के क्वाथादि को शर्करा या मिश्री के संयोग से पका कर जो तरल तैयार किया जाता है उसे 'पानक' कहते हैं। कभी २ यह अर्क-आदि में विना पकाये भी बनता है। इसमें द्रव से दूनी, तिगुनी या चौगुनी सिता डाल कर एक तार की चासनी बनाना चाहिए। प्राचीन लोग इसमें सुगन्ध द्रव्यों का ऊपर से संस्कार भी करते थे। यथा:—

द्राक्षाऽम्लिका-परूषादि-जलं खण्डादिमिश्रितम् ।
मरिचार्द्रककर्पूर-चातुर्जातादिसंस्कृतम् ॥

यह दो प्रकार का होता है:—

पानकं द्विविधं तत्स्या-दम्लानम्लविभेदतः ।

अपक्वाम्ल पानक:—

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम् ।
लवङ्गमरिचोन्मिश्रं पानकं पानकोत्तमम् ॥

अर्क:—किसी द्रव्य के उड़नशील सार भाग को वाष्प द्वारा उड़ा कर तरल रूप में करने को 'अर्क' कहते हैं। इसमें औषध द्रव्यों को चौगुने या अठगुने जल में चौबीस घण्टों से ३ दिन तक भिगोकर वकयन्त्र (भवका) द्वारा अर्क निकालना चाहिए। अर्क की बोतल जल में रखना चाहिए। यन्त्र के ऊपर से बराबर गरम पानी निकालता रहे तथा शीतल जल भरता रहे जिससे भाप तरल में परिवर्तित होती रहे।

पाक:—जब किसी ओषधि के चूर्ण, कल्क अथवा टुकड़ों को दूध में पका कर शर्करा की अथवा किसी चासनी के साथ भङ्गुर घन तैयार किया जाता है तो उसे उस ओषधि का 'पाक' कहते हैं। पाक-के लिये चीनी दूनी, तिगुनी या चौगुनी होनी चाहिए। यदि इसमें ओषधियों का चूर्ण डालना हो तो उसका पाक न कर बाद में डालना चाहिए। स्वाद बढ़ाने के लिये मेवे आदि भी बाद में ही डाले जाते हैं। प्रक्षेप द्रव्यों में केसर को घी में घोट कर; अफीम को दूध में पका कर तथा भांग को घी में तल कर छोड़ना चाहिए। यह मोदक अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुडपाक का एक रूपान्तर–मात्र है, जिनका वर्णन पहले हो चुका है। खण्ड-पाक में दूध में न पका कर केवल घी से भून कर चासनी के साथ पका कर घन बना लेते हैं। इनमें मोदक, बर्फी, पेड़े आदि इच्छानुसार बनाये जाते हैं।

क्षारनिर्माण-विधिः—

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि दग्ध्वा भूतिं समाहरेत्।
विमले भाजने न्यस्य सलिलन्तु चतुर्गुणम्॥
प्रक्षिप्य मर्दयेत् सम्यग् याममात्रं भिषग्वरः।
त्रिगुणीकृतवस्त्रेण स्रावयेत् सलिलं ततः॥
स्रावितं सलिलञ्चाथ वह्नौ सन्तापयेत् ततः।
निःशेषं सलिलं ज्ञात्वा निर्मलं क्षारमाहरेत्॥

क्षार-वृक्ष के पञ्चाङ्ग अथवा क्षार-भूयिष्ठ किसी भी भाग को जला कर पूर्ण भस्म कर ले। इसे चतुर्गुण जल में एक प्रहर तक खूब मले और थिर जाने पर त्रिगुण वस्त्र से छान कर जलांश जला डाले। क्षार कड़ाही के तले में जमा हुआ मिलेगा। जलाते समय जब थोड़ा जल शेष रह जाय तब बाष्प यन्त्र द्वारा अथवा धूप में सुखा लेना चाहिए, क्योंकि क्षार के अग्नि में जलने से गुण नष्ट हो जाते हैं। भस्म को घोलने के लिये १६ गुने जल का भी उल्लेख मिलता है।

द्रावकः—किसी भी लवण, अम्लीय या क्षारीय पदार्थ से तिर्यग् यन्त्र द्वारा जो सत्वरूप द्रव चुआया जाता है, जिस में कि साधारण द्रव्यों से लेकर कठिन से कठिन धातुओं तक को स्वरूप या पूर्ण अंशों में गलाने की शक्ति हैं—'द्रावक' कहलाता है। जिन पदार्थों का 'द्रावक' बनाना हो उन्हें तिर्यक् पातन यन्त्र में भर कर आग पर चढ़ा दे। यन्त्र की नालिका का सम्बन्ध एक बोतल में करे जिस में द्रव टपकेगा। इस बोतल को एक पानी भरे पात्र में रखना चाहिए जिससे बाष्प ठण्डा होकर द्रवरूप में आसानी के साथ परिणत होता रहे। इसके उदाहरण—शङ्खद्राव, लवणद्रावक, सोरकद्रावक एवं गन्धद्रावक हैं, विशेष के लिये रसतरङ्गिणी देखें।

यूष तथा रसः—यूष एवं रस का वर्णन पृष्ठ ५२ पर हो चुका है। जल-ग्रहणके लिये १८ गुण जल का मान भी यूष के पाकार्थ होता है—ऐसा वहां पर आया है। इससे तात्पर्य यह मालूम होता है कि यदि वैदल धान्यों (दाल) से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यूष प्राप्त करना हो तो १८ गुना जल देना चाहिए—जैसा कि योगरत्नाकर में लिखा है 'यूषः स्मृतो वैदलानामष्टादशगुणोऽम्भसि ।'

षडङ्गयूषः—

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतो द्विगुणं पयः ।
पादस्थं संस्कृतं ह्येष षडङ्गो यूष उच्यते ।

जिन द्रव्यों से संस्कार करना हो उनसे दूना मांस और सबके मिश्रण से दूना जल डाल कर पकावे । ¼ चौथाई रहने पर काम में लावे इसे 'षडङ्गयूष' कहते हैं ।

षडयूष तथा प्रमथ्या (काम्बलिक):—

तक्रं कपित्थं चाङ्गेरी मरिचाजाजिचित्रकैः ।
सुपक्वं षडयूषोऽयं—मयं काम्बलिकोऽपरः ॥
दध्यम्ललवणस्नेह—तिलमाषसमन्वितः ।
संज्ञा प्रमथ्या विहिता योगे दीपन–पाचने ॥

मट्ठा, कपित्थ (कैथ), चांगेरी, मिर्च, जीरा और चीता–इन सबको एकत्र पका कर जो यूष तैयार किया जाता है उसे 'षडयूष' कहते हैं । जल आदि का अनुपात साधारण यूष की तरह ही रहता है ।

इसके प्रस्तुत करने में जब दही, अम्ल द्रव्य, लवण, स्नेहद्रव्य, तिल और उड़द भी मिलाये जाते हैं तो उस यूष को 'प्रमथ्या' या 'काम्बलिक' कहते हैं । प्रमथ्या एक प्रकार का कषाय भी होता है जो कि साधारणतः अष्टगुण जल में चतुर्थांशावशिष्ट बनाया जाता है ।

सूपः–द्विदल धान्यों की दाल छिलका से युक्त तथा रहित दो प्रकार की होती है । इस को अष्टगुण जल में आवश्यकतानुसार नमक, मिर्च, धनियां, हल्दी, जीरा आदि डाल कर पकाया जाता है और पकाने के बाद हींग, जीरा आदि द्रव्यों से छौंक दिया जाता है—इसे 'सूप' कहते हैं । कई ग्रन्थकार यूष के बाद पढ़े जाने के कारण सूप में यूष के समान अनुपात में ही जल देकर पाक करने को लिखते हैं और चतुर्थांशावशिष्ट रखते हैं 'पादशिष्टो भवेत् सूपो ह्यम्लोऽनम्लश्च स द्विधा' इति ।

वेसवारः—निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडसमन्वितम् ।
कृष्णामरिचसंयुक्तं वेसवार इति स्मृतः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्थि-रहित मांस को पीस कर गुड़, घी, पीपल और मिर्च मिला कर पकाये हुए पदार्थ को 'वेसवार' कहते हैं। मांस को पकाने के बाद पीसकर पुनः पकाने का भी विधान है:—

'मासं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्हृषदि पेषितम्।
पिप्पली-खण्ड-मरिच-गुड-सर्पिः-समन्वितम्॥
ऐक्ष्यं विपचेत् सम्यग् 'वेसवार' इति स्मृतः।

भोजन में शाक तथा दाल आदि को स्वादिष्ट बनाने के लिये जो मसाले प्रयुक्त होते हैं उन्हें भी 'वेसवार' कहते हैं।

षडङ्ग पानीयः—इस में दो दो तोले द्रव्यों को लेकर ४ सेर जल में पकावे और आधा शेष रहने पर काम में लावे।

मिलित सभी द्रव्यों को दो तोला लेकर २५६ तोला (३½ सेर) जल में पका कर अर्द्धावशिष्ट रखने का भी एक मत है।

मद्यः—द्रव्यों का आसुतीकरण करके भवके या बक-यन्त्र द्वारा जो बाष्प रूप में उड़ा कर द्रव तैयार किया जाता है उसे 'मद्य' कहते हैं। इस वर्ग में अनेक द्रव्य गिने जाते हैं। आसवारिष्ट भी इसी वर्ग के द्रव्य हैं, क्योंकि उनमें भी प्रारम्भिक क्रिया (आसुतीकरण) मद्य की तरह ही होती है। यथा—

'यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः'

मद्य वर्ग के कतिपय द्रव्यः—

ज्ञेयः शीतरसः सीधु-रपक्वमधुरद्रवैः।
सिद्धपक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः॥
परिपक्वान्नसन्धान-समुत्पन्नां सुरां जगुः।
सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात् ततः कादम्बरी घना॥
यत्तालखर्जूररसैः सन्धितं सा हि वारुणी॥ आदि।

विशेष के लिये चरक सूत्र स्थान अध्याय २५ और २७ देखें।

शुक्त या चुक्रः—इसमें मद्यांश नष्ट हो जाता है, अतः इसे मद्य वर्ग में नहीं लिया जाता है—'विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते।'

निर्माणः—यन्मस्त्वादि-शुचौ माण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दही का तोड़, गुड़, शहद और कांजी के साथ धान्यराशि में ३ दिन रखने से शुक्त या चुक्र बनता है आसवारिष्ट आदि के पुनः सन्धान हो जाने से भी शुक्त बन जाता है ।

कांजीः—कुल्माषधान्यमण्डेन संहितं काञ्जिकं भवेत् ।

पक्व कुलथी तथा गोधूम, चावल आदि धान्य के साथ सन्धान करने से काञ्जी बनती है ।

कृशराः—तिलतण्डुलमाषैश्च कृशरा त्रिशरेति सा ।

तिल, चावल और उरद मिला कर सिद्ध किये हुए अन्न को कृशरा या त्रिशरा कहते हैं । माष के स्थान पर मूंग भी छोड़ी जाती है । केवल तण्डुल तथा दाल मिलाने से भी कृशरा बनती है । इसमें $\frac{1}{4}$ दाल + $\frac{3}{4}$ तण्डुल मिलाकर पकाना चाहिए ।

पायस या परमान्नः—

अर्द्धावशिष्टे क्थनाद् दुग्धेऽष्टांशाँश्च तण्डुलान् ।
पचेन्नातिद्रवघनं परमान्नमिदं स्मृतम् ॥

जब दूध पकते २ आधा रह जाय तो उसमें दूध का $\frac{1}{8}$ अष्टमांश चावल डाल कर पुनः पकावे । गाडा होने पर इसमें सिता मिलावे—इसको 'पायस' या 'परमान्न' कहते हैं ।

उष्णोदकः—काथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम् ।
भवत्यर्द्धावशिष्टन्तु तदुष्णोदकमुच्यते ॥

जब जल उबालते २ फेन रहित एवं निर्मल होकर आधा शेष रह जाय तो उसे उष्णोदक कहते हैं इसको आवश्यकतानुसार ठण्डाकर प्रयोग करना चाहिए । इसमें निम्नलिखित मतभेद-प्रदर्शक वाक्य भी मिलता हैः—

अष्टमांशावशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा ।
अथवा क्थनेनैव सिद्ध-मुष्णोदकं वदेत् ॥

लेपः—किसी औषध को किसी द्रव के साथ पीसकर जो किसी स्थानविशेष में या सर्वत्र मोटे या पतले स्तर के रूप में चढ़ाया जाता है—उसे 'लेप' या 'प्रलेप' कहते हैं । प्राचीन ग्रन्थों में लेप तथा प्रलेप के नाम से अनेकों योग आये हैं । प्रलेप-दोषनाशन, विषनाशन तथा वर्ण-कान्ति वर्द्धन के लिये प्रयुक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया जाता है और इसीलिये उसके दोषघ्न, विषघ्न एवं वर्णकान्तिप्रद ऐसे भेद भी किये जाते हैं। यह शीत तथा उष्ण दोनों प्रकार का प्रयुक्त होता है।

उपनाहः—पत्र अथवा द्रव्यों के कल्क को शरीर के किसी स्थान पर रख कर पट्टीकरण विधि से कपड़े द्वारा बाँध देने को 'उपनाह' कहते हैं। यह स्निग्ध और रूक्ष दो प्रकार का होता है। जब साथ में स्नेह द्रव्य का प्रयोग होता है तो स्निग्ध अन्यथा रूक्ष कहा जाता है। इसका शोथ-शमन, पाक और वेदना-हरण के लिये बहुत प्रयोग होता है।

सतिलाः सातसीबीजा दध्यम्लैः सक्तुपिण्डिकाः।
सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरुपनाहने॥
तैलेन सर्पिषा वाऽपि द्वाभ्यां सक्तुकपिण्डिका।
सुखोष्णः शोथपाकार्थ—उपनाहः प्रशस्यते॥

गुद-वर्तिः—गुद में स्नेहन तथा मल-प्रवर्तन के लिये ओषधि द्रव्यों को मिला कर जो विशेष आकार-प्रकार की दृढ़ वर्ती बनायी जाती है उसे 'गुदवर्त्ति' कहते हैं। इसका अग्रभाग पतला, नोकीला, परन्तु कुण्ठित, धाररहित अथवा न गड़ सकने वाला होना चाहिए। इसकी मोटाई अङ्गुष्ठ-प्रमाण होनी चाहिए। अंगूठे से रोगी का अंगूठा अभिप्रेत है। इसकी लम्बाई वय के अनुसार ६, ८ और १२ अङ्गुल तक की होती है। चरक ने स्नेह-प्रवर्तिका वर्त्ति का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है:—

पिप्पलीलवणागार-धूमापामार्गसर्षपैः।
वार्ताकुरसनिर्गुण्डी-शम्पाकैः ससहाचरैः।
मूत्राम्लपिष्टैः सगुडै-र्वर्त्तिं कृत्वा प्रवेशयेत्।
(अग्रे तु सर्षपाकारां पश्चार्द्धे माषसंमिताम्॥
नेत्रदीर्घां घृताभ्यक्तां सुकुमारामभङ्गुराम्।
नेत्रवन्मूत्रनाड्यां तु) पायौ चागुङ्ष्ठसम्मिताम्॥

इयं च वर्त्तिर्गुडपाकेन कठिना कर्त्तव्या यथा श्लक्ष्णा भवति। इति (चक्रपाणिः)

इसी प्रकार मल-प्रवर्तन के लिये वर्ति के प्रयोगों में 'फलवर्ति' का बहुत अधिक प्रयोग होता है। इसकी विधि निम्न भांति होती है।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठसन्निभा।
मलप्रवर्त्तिनी वर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्फटिकीकरण (Crystallization):—किसी द्रव्य का अतितृप्त विलयन बना कर उसे छान कर रख देने से पात्र के तल में नियमित आकार के कण जमे हुए दिखायी देते है:—इस क्रिया को 'स्फटिकीकरण' कहते हैं।

अतितृप्त विलयन Seturated Solution:—किसी द्रव्य को जल में डाल कर उसका घोल बनाइये और घुल जाने पर उसमें थोड़ा २ कर के द्रव्य बराबर छोड़ते जाइए। यह द्रव्य उस में घुलता जायगा, परन्तु एक अवस्था ऐसी आयेगी जब उसका घुलना बिलकुल बन्द हो जायगा। अब यदि इसको गर्म करें तो इसमें कुछ और भी द्रव्य घुल सकेगा, परन्तु अन्त में फिर भी घुलना बन्द हो जायगा। ऐसे घोल को जिसमें द्रव्य को घोलने की शक्ति पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं 'अतितृप्त विलयन' कहते हैं।

तुत्थ, सोरा-आदि द्रव्यों का स्फटिकीकरण ऐसे ही किया जाता है। तुत्थ लगभग ५ तो० जल में १० तो० तक घुल जाता है। इसको सारकपत्र (filter) अथवा द्विगुण, त्रिगुण वस्त्र से ही तप्तावस्था में ही छान लेना चाहिए, क्योंकि ठण्डा होने पर कण जमने लगते हैं जिससे कि छन नहीं पाता। इसको तब तक रखना चाहिए जब तक पात्र के तल में पूर्णरूप से कण न जम जायं। बाद में जलांश मन्द अग्नि से या वाष्प-यन्त्र पर रख कर जला देना चाहिए। जल थोड़ा शेष रहते ही उतारना अच्छा है। इसको धूप में सुखा सकते हैं।

किसी २ द्रव्य के साधारण घोल को जलाने से भी 'स्फटिक' प्राप्त हो जाते हैं। सोरा के लिये भी अतितृप्त विलयन की आवश्यकता नहीं होती।

द्रव्यों के ग्रहणीय अङ्ग:—

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च।
तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः॥

जिन वृक्षों की जड़ें काफी भारी हैं और जिन में काष्ठ का भाग बहुत अधिक है उनकी तो केवल छाल ही लेनी चाहिए, परन्तु जो छोटी जड़ों वाले पौदे हैं उनका तो सर्वांग ग्रहण करे।

कुछ उदाहरण:—

सारः स्यात् खदिरादीनां निम्बादीनाञ्च वल्कलम्।
फलन्तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा॥

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद् बीजकादितः ।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलाऽऽदितः ॥

खदिर आदि का सार, निम्ब आदि की छाल, अनार आदि का फल, परवर आदि के पत्र, वट आदि की त्वचा, विजयसार आदि का सार, तालीस आदि के पत्र तथा त्रिफला आदि के फल लेना चाहिए। अथवाः—

निर्देशः श्रूयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः ।
तादृशः संविधातव्यः शास्त्राभावे प्रसिद्धितः ॥

अङ्गग्रहण के विषय में शास्त्र में जहां पर जैसा उल्लेख हो वहां पर उसी के अनुसार ग्रहण करे और यदि कोई भी उल्लेख न मिलता हो तो लोक-व्यवहार के अनुसार ग्रहण करे।

ग्रहण काल—

भूतादिमुक्तयेऽभ्यर्च्य सायं प्रातश्च सम्मुखे ।
श्रद्धैरुपोषितैर्ग्राह्यं भेषजं कर्मकृद् भवेत् ॥

श्रद्धापूर्वक उपवास रह कर सन्ध्या अथवा प्रातःकाल के समय औषध (वनस्पति) ग्रहण करने से वह विशेष फलदायक होती है। 'सम्मुखे भूतादिमुक्तयेऽभ्यर्च्य' से तात्पर्य यह है कि वृक्षों के ऊपर जिन भूतादिकों (प्राणियों) का आवास है उनको वहां से हटने के लिये पहले प्रार्थना की जाती है तब कहीं उस वनस्पति को लिया जाता है।

इसके लिये ही वैद्य को उपवास रह कर शिवजी की पूजा करने के बाद वनस्पतियों के पास जा कर शिवजी के आदेश एवं प्रजा के कल्याणार्थ औषधग्रहण होने के कारण उन पर के निवासियों से हटने के लिये निवेदन करना पड़ता है—इस प्रकार के अनेक वाक्य प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं:—

ॐ निवसन्ति हि भूतानि यान्यस्मिन् कानि चिद् द्रुमे ।
अपक्रामन्त्वतस्तानि प्रजाऽर्थं पाट्यते द्रुमः ॥
ॐ वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।
ये भूतास्तेऽपसर्पन्तु वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया ॥

द्रव्य-संरक्षण-विधिः—संगृहीत द्रव्यों को उचित रूप से रखने के लिये कई बातों पर ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि यदि उनका ठीक २ संरक्षण न किया जाय तो वे अत्यन्त अल्पकाल में ही खराब होकर अपने प्राकृत गुणों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रायः रहित हो जाते हैं । यद्यपि वानस्पतिक, खनिज, सिद्ध एवम् असिद्ध सभी के लिये साधारणतः संरक्षणनियम एक ही से होते हैं, जिनके ऊपर प्रायः सर्वदा ध्यान रखना पड़ता है; तथापि वानस्पतिक द्रव्यों के लिये अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है। क्योंकि ये शीघ्रता के साथ तथा स्वल्प काल में ही जरा सी भी विकारोत्पादक परिस्थिति उत्पन्न होने से विकृत हो जाते हैं ।

१—वानस्पतिक द्रव्यों को रखने के पहले धूप में भली भाँति सुखा डालना चाहिए । क्योंकि गीली रहने से शीघ्र खराब होती हैं ।

२—रखने के लिये मिट्टी या लोहे के टिनों का प्रयोग करना चाहिए। वाता-प्रवेश्य पात्रों का प्रयोग सर्वोत्तम होता है । इसके लिये यदि चीनी अथवा-कांच के पात्रों का प्रयोग किया जा सके तो अत्यन्त उत्कृष्ट होगा ।

३—रखने का स्थान प्रकाशयुक्त तथा सीलरहित होना चाहिए । बरसात के दिनों में ज़मीन की आर्द्रता से ओषधियां प्रायः खराब हो जाती हैं—अतः उनका सम्बन्ध सीधे ज़मीन से न होना चाहिए । दीवाल की आलमारियों में रखना भी हानिप्रद है ।

४—बाहरी कूड़ा-कबाड़ आदि विकार-जनक पदार्थों से सुरक्षित रखने के लिये पात्रों का मुख दृढ़ता के साथ बन्द करना चाहिए ।

५—सूर्यताप का सीधा सम्पर्क भी लाभप्रद नहीं होता ।

६—इनके अतिरिक्त अन्य साधारण छोटी-मोटी बातों का यथासमय ध्यान रखना चाहिये ।

७—विशिष्ट द्रव्यों के संरक्षण (Preservation) का विधान अवश्य ही विशेष प्रकार का होता है परन्तु उक्त बातों का ध्यान सर्वत्र रखना पड़ता है ।

लाक्षारस—

दशांशं लोध्रमादाय तद्दशांशां च सर्जिकाम् ।
किञ्चिच्च बदरीपत्रं वारि षोडशधा स्मृतम् ॥
बस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः ।

१ भाग लाक्षा, $\frac{1}{10}$ भाग लोध और लोध से $\frac{1}{10}$ भाग ($\frac{1}{100}$ भाग) सर्जिक्षार लेकर १६ भाग अर्थात् लाक्षा से १६ गुने जल में कुछ बदरी-पत्र छोड़-कर पाक करे । $\frac{1}{4}$ शेष रहने पर कपड़े से छान ले । प्राप्त द्रव लाक्षारस होगा ।

एक मत से लाक्षा को ६ गुने जल में दोलायन्त्र द्वारा पका कर २१ बार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छान लेने अथवा पसा लेने से लाक्षारस प्राप्त हो जाता है।

घृत-तैलमूर्च्छनः—

'षड्गुणेनाम्भसा लाक्षा दोलायन्त्रे ह्युपस्थिता।
त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसमिदं विदुः ॥' इति।

औषध—संयोग से घृत तथा तैल की उग्रता, आम-दोष, गन्ध एवं वर्ण को परिवर्तित कर उनमें योगोक्त ओषधियों के गुण-ग्रहण की शक्ति बढ़ाने के लिये जो साधन के पूर्व-पाक क्रिया की जाती है उसे उनका मूर्च्छन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार घृत एवं प्रत्येक तैल का भिन्न २ द्रव्यों द्वारा होता है।

घृत-मूर्च्छनः—

पथ्याधात्रीबिभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च
द्रव्यैरैतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन।
आज्यं प्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद् वैद्यराज-
स्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत् सौख्यदायि ॥

हरड़, आमला, बहेड़ा, मोथा, हल्दी और नीबू का रस एक एक पल लेकर मन्द अग्नि पर एक प्रस्थ घी को मूर्च्छित करे। इसमें पाकार्थ जल चतुर्गुण लेना चाहिए। पहले हल्दी फिर नीबू का रस और बाद में शेष द्रव्यों को डाल कर क्रमशः पाक करने की भी प्रथा है। घी को आग पर चढ़ा दे। जब उसका कड़कना तथा फेन आना बन्द हो जाय तब पहले पिसी हल्दी और सम्पूर्ण जल का चतुर्थांश डाल कर पाक करे। ½ भाग जल रहने पर नीबू का रस तथा उतना ही जल डाल दें और कुछ जल बाकी रहने पर शेष द्रव्य तथा जल मिला कर पाक समाप्त करे।

तिलतैल मूर्च्छनः—

मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः साधपथ्यैः कुमार्याः
सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥
तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्माच्च पादांशिका
दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेषः—स्त्रियों में दोनों ब्लडप्रेशर पुरुषों की अपेक्षा १० कम होता है।

डाइस्टोलिक (प्रसारीय) रक्तभार स्वस्थ व्यक्ति में ६०–९० के बीच रहता है। आकुंचन और प्रसारीय रक्तभार में ३०–६० तक अन्तर स्वस्थ में रहता है। इससे कम या अधिक अन्तर रोगसूचक है।

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय १५

पश्चात् कर्म

नाड़ी देखने के पश्चात् हस्तप्रक्षालन——नाड़ी देखते समय रोगी के हाथ से वैद्य के हाथ का सम्पर्क होता है। इसलिये आवश्यक है कि वह नाड़ी देखने के बाद अपना हाथ स्वच्छ जल(विशेषतः उत्तम सुगन्धित कृमिनाशक जल यथा कर्पूरवासित जल) से भली भाँति धोकरश्च तौलिया आदि से पोंछ ले। जिससे रोग का संक्रमण न हो।

यह स्मरणीय है कि यथा सम्भव प्रत्येक रोगी देखने के बाद ऐसा करें। यदि यह सम्भव न हो तो कम से कम संक्रामक या घृणित व्याधियों के रोगियों को देखने के बाद अवश्य ऐसा करें।

नाड़ीज्ञान को सुरक्षित रखिये——इस प्रकार विद्वानों को अत्यन्त सूक्ष्मता पूर्वक नाड़ी ज्ञान करना चाहिये। यह विद्या स्वर्ग में भी दुर्लभ है अतः अत्यन्त यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये।†

वाड़ीं दृष्ट्वा तु यो वैद्यो हस्तप्रक्षालनं चरेत्।
रोगहानिर्भवेच्छीघ्रं गंगास्नानफलं लभेत्॥ (वाड़ी दर्पण)

† एवंसूक्ष्मादि भेदेन नाड़ी ज्ञेया विचक्षणैः।
स्वर्गेऽपि दुर्लभा विद्या गोपनीया प्रयत्नतः॥ (महर्षि कणाद)

किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ में किसी भी विद्या को छिपाने का निर्देश नहीं है। प्रत्येक स्थान पर सभी विद्याओं को श्रद्धालु और सत्पात्र को देने के लिये स्पष्ट कहा गया है। जहाँ भी गोपनीय शब्द आया है उसका तात्पर्य रक्षा करने योग्य है। अतः हमारी प्रार्थना है कि नाड़ी-ज्ञान की कला की सुरक्षा कीजिये एवं सत्पात्रों में इसका प्रचार कीजिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाड़ी-गति का शब्द-कोश

कठिन या कठोर = स्पर्श में कठिन (दबाने से ठोस जैसी) ।

कराग्र = नाड़ी पर वैद्य की तर्जनी अंगुली का स्पर्श-स्थल ।

कृश = आकार में पतली ।

कोष्ण = स्पर्श में कुछ उष्ण ।

गम्भीर = धीमी-धीमी (चञ्चलता रहित) ।

गुर्वी = भारी (जैसे कुछ भरने से गति में भारीपन हो) ।

चञ्चल या चाञ्चल्य = अत्यधिक स्पन्दन वाली विशेषतः तर्जनी पर प्रतीत होती है ।

चपल = क्षण-क्षण में विभिन्न स्थान पर विभिन्न स्पर्श वाली, स्पन्दन अत्यन्त अधिक रहेंगे, तर्जनी पर अपेक्षाकृत अधिक अनुभूति होगी ।

जड़ = अवरोध के कारण अत्यन्त कम गति वाली पर सरलता से स्पर्शगम्य ।

तन्तुला = तन्तु के समान ।

तलगा = त्वचा की सतह से नीचे गति वाली, इसमें बहुत चेष्टा से या दबाने से स्फुरण प्रतीत होते हैं ।

दीर्घा = तीनों अंगुलियों में लम्बी रेखावत् स्पर्श वाली ।

द्रुत = अत्यधिक स्पन्दन वाली । ये स्पन्दन गिने नहीं जा सकते ।

दृढ़वाहिनी = दृढ़ (अत्यन्त दबाने से भी न दबने वाले स्पन्दनों वाली ।

नाना धर्मवती = दोष, दूष्य, काल एवं अंगुली के क्रम को छोड़ कर विभिन्न-विभिन्न गतियों वाली ।

पिच्छिल = फिसलने वाली ।

मृदु = उछाल या स्पन्दन ।

RajGuru Math, Bhivara, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्लावयन्ती = उछालती (उछलती) हुई।
पृथुला = चिपटी।
बलवती = बलवान स्फुरण (फोर्स) वाली।
बिलीन = डूबी सी, अत्यन्त कठिनाई से स्पर्श लभ्य।
मन्द = कम स्पन्दन।
मन्थर = कम स्पन्दन या धीरे-धीरे।
मुख = नाड़ी पर वैद्य की तर्जनी अंगुली का स्पर्श स्थल।
मध्यकर = ,, ,, मध्यमा ,, ,, ,, पृष्ठ ११३ में मध्यकर का जो तात्पर्य है वह एक नयी दिशा की ओर संकेत मात्र है। यहाँ लिखित अर्थ सर्वसम्मत है।
मूल = नाड़ी पर वैद्य की अनामिका अंगुली का स्पर्श स्थल।
मृदु = कोमल।
वक्र = टेढ़ी।
विमल = छटपटाती हुई सी।
वलयिनी = चक्कर काटती हुई सी।
विलुलिता = चंचल।
विशदा = स्पष्ट प्रतीत होने वाली।
व्याकुल = छटपटाती हुई।
शिथिल = चञ्चलता से रहित, थकी सी।
शीघ्रा = स्वाभाविक से अधिक स्पन्दन वाली।
शीता = शीतल स्पर्श वाली।
समा = बराबर एक गति वाली।
सरल = सीधी।
सूक्ष्म = इसके स्पन्दन अत्यन्त सूक्ष्म प्रतीत होते हैं।
स्तब्ध = जकड़ी सी।
स्थिर = एक गति (बिना हेर फेर के) से चलने वाली।
स्निग्ध = चिकनी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मजीठ, हल्दी, लोध, नागरमोथा, नलिका, आमला, हरड, बहेडा, केवडा, नेत्रवाला (महासहा, वटप्ररोह, जटा, हाऊबेर) आदि द्रव्य लेकर पूर्ववत् घृत की तरह पाक करे। इसमें भी हल्दी फिर मजीठ और बाद में शेष द्रव्य का पाक कर सकते हैं। तेल एक भाग, मंजीठ $\frac{1}{2}$ भाग तथा अन्य द्रव्य प्रत्येक $\frac{1}{8}$ भाग और जल चतुर्गुण लेने का विधान है। यदि सुगन्धित तैल बनाना हो तो पञ्चपल्लव योग से मूर्च्छन करना चाहिएः—

पञ्चपत्ररसैर्युक्तं दधिलाक्षासमन्वितम्।
मूर्च्छनं कारयेत् प्राज्ञो गन्धं वर्णं जहाति च॥

पञ्च—पत्र (आम, जामुन, कैथ, बिजौरा नीम्बू और बेल), दही तथा लाख मिलाकर मूर्च्छित करने का विधान यह है कि $\frac{1}{8}$ भाग हर एक पत्र को लेकर कूटकर द्विगुण जल मिलाकर अलग २ रस निचोड ले। तेल को आगपर चढ़ाकर शनैः २ उक्त रस डालता रहे।

दही का चतुर्थभाग लाक्षा तथा कुछ बदरीपत्र और सर्जिक्षार मिलाकर अष्टगुण (दही से) जल में पका कर अष्टमांशावशेष रखे। इसे तैल से चतुर्थांश भाग के अनुपात में डाल कर पाक करना चाहिए।

एरण्डतैल मूर्च्छनः—

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका।
ह्रीवेरघनखर्जूर-वटशुङ्गनिशायुगम्॥
नलिका भेषजं देयं मूर्च्छने दधि काञ्जिकम्॥
प्रस्थे शाणमितं देयं मूर्च्छने दधि काञ्जिकम्॥

मजीठ, मोथा, धनिया, आमला, हरड, बहेडा, जयन्ती, हाऊबेर, नेत्रवाला, खजूर, बड की जटा, हल्दी, दारुहल्दी, नलिका और केवड़ा समभाग में एक प्रस्थ तेल के लिये एक कर्ष लेकर एक शाण दही तथा कांजी मिला कर चतुर्गुण जल से पाक करना चाहिए।

सर्षपतैल मूर्च्छनः—

वयस्थारजनीमुस्त-बिल्वदाडिमकेसरैः।
कृष्णजीरकह्रीबेर-नलिकैः सबिभीतकैः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥

आमला, हल्दी, मोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेसर, कालाजीरा, नेत्रवाला या हाऊबेर, नलिका और बहेड़ा को समभाग में एक प्रस्थ तेल के लिये एक कर्ष लेकर चतुर्गुण जल में सिद्ध करना चाहिए ।

इति परिशिष्टम् ।

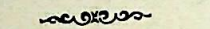

इति श्रीगङ्गाधररायसङ्कलिता हरदोई-मण्डलान्तर्गत 'हरियावाँ" वास्तव्य-पण्डितप्रकाण्ड-पं० पुत्तूलालशास्त्रि-तनूज-श्रीगिरिजादयालु-शुक्ल-'गिरिजेश' शास्त्रिप्रणीतेन परिशिष्टेन प्रकाशिकाऽऽख्यव्या-ख्यया चोपेताऽऽयुर्वेदीयपरिभाषा समाप्ता ।

प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,
पो० बाक्स नं० ८, बनारस-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.